नारायणी-स्तुति

पृथ्वी पर तेजो-रूपा
भगवती नारायणी

सर्वतः पाणि-पादान्ते, सर्वतोऽक्षि-शिरो-मुखे।
सर्वतः श्रवण-घ्राणे, नारायणि! नमोऽस्तु ते।।

प्रकाशक : परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान
श्रीचण्डी-धाम, अलोपी-देवी मार्ग, प्रयाग-२११००६

'चण्डी' आध्यात्मिक पुस्तक-माला

'चण्डी' आध्यात्मिक पुस्तक-माला द्वारा निम्न-लिखित पुस्तकें नियमित रूप से प्रकाशित होनेवाली पुस्तकों के अतिरिक्त प्रकाशित होनेवाली हैं। इच्छुक बन्धु इन्हें मँगाने हेतु कृपया सम्पर्क करेंगे-

- हिन्दी कामाख्या तन्त्र
- हिन्दी पुरश्चरण-रसोल्लास
- श्रीबगला-कल्पतरु
- नव-ग्रह-साधना
- दश महा-विद्या तन्त्र
- श्री गायत्री-कल्पतरु
- श्री काली-कल्पतरु
- श्री काली-पूजा-पद्धति
- मुमुक्षु मार्ग
- पूजा-रहस्य
- तन्त्र-कल्पतरु
- श्रीभुवनेश्वरी-कल्पतरु
- कौल-कल्पतरु
- साधन-माला
- शक्ति-सङ्गम-तन्त्र
- श्री ललिता-सहस्त्र-नाम

सम्पर्क हेतु पता

श्रीचण्डी-धाम, कल्याण मन्दिर प्रकाशन
अलोपी-देवी मार्ग, प्रयाग-२११००६
दूरभाष : ०५३२-२५०२७८३
मोबाइल : ०९४५०२२२७६७

विशेष : मोबाइल द्वारा एस.एम.एस कर के भी अपनी प्रति सुरक्षित करा सकते हैं

'कौल-कल्पतरु' चण्डी की विशेष प्रस्तुति

वर्ष ७० (१)

नारायणी-स्तुति

अग्नि-प्रमुख देवों द्वारा प्रसन्न-मुख और पूर्ण-मनोरथ होकर 'कात्यायनी चण्डिका देवी की स्तुति'

एवं

श्रीदेवी-उक्ति

(सप्तशती-सूक्त-रहस्य)

व्याख्याकार
'कौल-कल्पतरु' श्री श्यामानन्दनाथ जी
आदि-सम्पादक
प्रातः-स्मरणीय 'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल
सम्पादक
ऋतशील शर्मा

★

प्रकाशक
पण्डित देवीदत्त शुक्ल स्मारक
परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान
कल्याण मन्दिर प्रकाशन
श्रीचण्डी-धाम, प्रयाग-राज-२११००६ ☎ ९४५०२२२७६७
Website : www.shreechandidham.com Email : chandi_dham@rediffmail.com
अनुदान ४०/-

प्रकाशक

पण्डित देवीदत्त शुक्ल स्मारक

परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

श्रीचण्डी-धाम, प्रयाग-राज-२११००६ ☎ ९४५०२२२७६७

समस्त आपत्तियों को दूर करनेवाली
सभी ऐश्वर्यों को देनेवाली
सप्तशती की स्तुतियाँ
(सूक्त)

देवि! प्रसीद परि-पालय नोऽरि - भीते-
नित्यं यथाऽसुर - वधादधुनैव सद्यः।
पापानि सर्व - जगतां प्रशमं नयाशु,
उत्पात-पाक-जनितांश्च महोप-सर्गान्।।

हे देवि! 'प्रसन्न' होओ।
सर्वदा हम लोगों की शत्रुओं से रक्षा करो।
संसार के 'दुरितों' को शीघ्र शान्त करो तथा
'पापों' के परिणाम-स्वरूप 'उपद्रवों' को शान्त करो।

तृतीय संस्करण

माघ पूर्णिमा, क्रोधी सं० २०६८ वि०-०७ फरवरी, २०१२

परा-वाणी प्रेस, अलोपी-देवी मार्ग, प्रयाग-राज (उ०प्र०)

श्रीनारायणी-स्तुति

विनियोग—ॐ अस्य श्रीनारायणी-स्तुति-मन्त्रस्य श्री वह्नि-पुरोगमा ब्रह्मादयो सेन्द्रा सुरा ऋषयः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीत्रिगुणात्मक-मूर्ति-दुर्गाम्बा देवता, श्रीत्रिगुणात्मक-मूर्ति-दुर्गाम्बा-प्रीत्यर्थे पाठे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यास—श्री वह्नि-पुरोगमा-ब्रह्मादयो-सेन्द्रा-सुरा-ऋषिभ्यो नमः शिरसि, अनुष्टुप् छन्दसे नमः मुखे, श्रीत्रिगुणात्मक-मूर्ति-दुर्गाम्बा-देवतायै नमः हृदि, श्रीत्रिगुणात्मक-मूर्ति-दुर्गाम्बा-प्रीत्यर्थे पाठे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे।

।।ध्यान।।

ॐ सिंहस्था शशि-शेखरा मरकत-प्रख्यैश्चतुर्भिर्भुजैः।
शङ्ख चक्र-धनुः-शरांश्च दधतीं नेत्रैस्त्रिभिः शोभिता।।
मुक्ताङ्गद-हार-कङ्कण-रणत्-कांची-क्वणन्-नूपुरा।
दुर्गा दुर्गति-हारिणी भवतु नो रत्नोल्लसत्-कुण्डला।।१

ॐ विद्युत्-दाम-सम-प्रभां मृग-पति-स्कन्ध-स्थितां भीषणाम्।
कन्याभिः करवाल-खेट-विलसद्-हस्ताभिरासेविताम्।।
हस्तैश्चक्र-गदाऽसि-खेट-विशिखांश्चापं गुणं तर्जनीम्।
विभ्राणामनलात्मिका शशि-धरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे।।२

ॐ ध्यायेन्नित्यां महा-देवीं, मूल-प्रकृतिमीश्वरीम्।
ब्रह्मा-विष्णु-शिवादीनां, पूज्यां वन्द्यां सनातनीम्।।३

।।मानस पूजन।।

ॐ लं पृथिव्यात्मकं गन्धं श्रीत्रिगुणात्मक-मूर्ति-दुर्गाम्बा-प्रीतये समर्पयामि नमः।
ॐ हं आकाश-तत्त्वात्मकं पुष्पं श्रीत्रिगुणात्मक-मूर्ति-दुर्गाम्बा-प्रीतये समर्पयामि नमः।
ॐ यं वायु-तत्त्वात्मकं धूपं श्रीत्रिगुणात्मक-मूर्ति-दुर्गाम्बा-प्रीतये घ्रापयामि नमः।
ॐ रं अग्नि-तत्त्वात्मकं दीपं श्रीत्रिगुणात्मक-मूर्ति-दुर्गाम्बा-प्रीतये दर्शयामि नमः।
ॐ वं जल-तत्त्वात्मकं नैवेद्यं श्रीत्रिगुणात्मक-मूर्ति-दुर्गाम्बा-प्रीतये निवेदयामि नमः।
ॐ सं सर्व-तत्त्वात्मकं ताम्बूलं श्रीत्रिगुणात्मक-मूर्ति-दुर्गाम्बा-प्रीतये समर्पयामि नमः।

ॐ

।।पूर्व-पीठिका—ऋषिरुवाच।।

देव्या हते तत्र महाऽसुरेन्द्रे,
सेन्द्राः सुरा वह्नि - पुरो-गमास्ताम्।
कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्ट - लाभाद्,
विकाशि - वक्त्रास्तु विकाशिताशाः।।१।।

।।मूल-पाठ—देवा ऊचुः।।

देवि! प्रपन्नार्त्ति - हरे! प्रसीद,
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।
प्रसीद विश्वेश्वरि! पाहि विश्वम्,
त्वमीश्वरी देवि! चराचरस्य।।१।।

आधार - भूता जगतस्त्वमेका,
मही - स्वरूपेण यतः स्थिताऽसि।
अपां स्वरूप - स्थितया त्वयैत—
दाप्यायते कृत्स्नमलंघ्य - वीर्ये!।।२।।

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्त - वीर्या,
विश्वस्य वीजं परमाऽसि माया।
सम्मोहितं देवि! समस्तमेतत्,
त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्ति - हेतुः।।३।।

विद्याः समस्तास्तव देवि! भेदाः,
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्ब! एतत्,
का ते स्तुतिः स्तव्य - परा परोक्तिः।।४।।

सर्व - भूता यदा देवी, स्वर्ग - मुक्ति - प्रदायिनी।
त्वं स्तुता स्तुतये का वा, भवन्तु परमोक्तयः।।०५।।

सर्वस्य बुद्धि - रूपेण, जनस्य हृदि संस्थिते!।
स्वर्गापवर्गदे देवि!, नारायणि! नमोऽस्तु ते।।०६।।

कला - काष्ठादि - रूपेण, परिणाम - प्रदायिनि!।
विश्वस्योपरतौ शक्ते!, नारायणि! नमोऽस्तु ते।।०७।।

सर्व - मङ्गल - माङ्गल्ये!, शिवे! सर्वार्थ - साधिके!।
शरण्ये! त्र्यम्बके! गौरि!, नारायणि! नमोऽस्तु ते।।०८।।

सृष्टि - स्थिति - विनाशानां, शक्ति - भूते! सनातनि!।
गुणाश्रये! गुण - मये!, नारायणि! नमोऽस्तु ते।।०९।।

शरणागत - दीनार्त्त - परित्राण - परायणे!।
सर्वस्यार्त्ति - हरे देवि!, नारायणि! नमोऽस्तु ते।।१०।।

हंस - युक्त - विमानस्थे!, ब्रह्माणी - रूप - धारिणि!।
कौशाम्भः - क्षरिके देवि!, नारायणि! नमोऽस्तु ते।।११।।

त्रिशूल - चन्द्राहि - धरे!, महा - वृषभ - वाहिनि!।
माहेश्वरी - स्वरूपेण, नारायणि! नमोऽस्तु ते।।१२।।

मयूर - कुक्कुट - वृते!, महा - शक्ति - धरेऽनघे!।
कौमारी - रूप - संस्थाने, नारायणि! नमोऽस्तु ते।।१३।।

शङ्ख - चक्र - गदा - शार्ङ्ग - गृहीत - परमायुधे!।
प्रसीद वैष्णवी - रूपे!, नारायणि! नमोऽस्तु ते।।१४।।

गृहीतोग्र - महा - चक्रे!, दंष्ट्रोद्धृत - वसुन्धरे!।
वराह - रूपिणि शिवे!, नारायणि! नमोऽस्तु ते।।१५।।

नृसिंह - रूपेणोग्रेण, हन्तुं दैत्यान् कृतोद्यमे!।
त्रैलोक्य - त्राण - सहिते!, नारायणि! नमोऽस्तु ते।।१६।।

किरीटिनि महा - वज्रे!, सहस्र - नयनोज्ज्वले!।
वृत्र - प्राण - हरे! चैन्द्रि!, नारायणि! नमोऽस्तु ते।।१७।।

शिव - दूती - स्वरूपेण!, हत - दैत्य - महा - बले!।
घोर - रूपे! महा - रावे!, नारायणि! नमोऽस्तु ते।।१८।।

दंष्ट्रा कराल - वदने!, शिरो - माला - विभूषणे!।
चामुण्डे मुण्ड - मथने!, नारायणि! नमोऽस्तु ते।।१९।।

लक्ष्मि! लज्जे! महा-विद्ये!, श्रद्धे! पुष्टि-स्वधे! ध्रुवे!।
महा - रात्रि! महाविद्ये!, नारायणि! नमोऽस्तु ते।।२०।।

मेधे! सरस्वति! वरे!, भूति! बाभ्रवि! तामसि!।
नियते! त्वं प्रसीदेशे!, नारायणि! नमोऽस्तु ते।।२१।।

सर्व - स्वरूपे! सर्वेशे!, सर्व - शक्ति - समन्विते!।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि!, दुर्गे देवि! नमोऽस्तु ते।।२२।।

एतत् ते वदनं सौम्यं, लोचन - त्रय - भूषितम्।
पातु नः सर्व - भीतिभ्यः, कात्यायनि! नमोऽस्तु ते।।२३।।

ज्वाला - करालमत्युग्रमशेषासुर - सूदनम्।
त्रिशूलं पातु नो भीतेः, भद्र - कालि! नमोऽस्तु ते।।२४।।

हिनस्ति दैत्य - तेजांसि, स्वनेनापूर्य या जगत्।
सा घण्टा पातु नो देवि!, पापेभ्योऽनः सुतानिव।।२५।।

असुरासृग् - वसा - पङ्क - चर्चितस्ते करोज्ज्वलः।
शुभाय खड्गो भवतु, चण्डिके! त्वां नता वयम्।।२६।।

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा,
रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान्।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणाम्,
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति।।२७।।

एतत् - कृतं यत् कदनं त्वयाऽद्य,
धर्म - द्विषां देवि! महाऽसुराणाम्।
रूपैरनेकैर्बहुधाऽऽत्म - मूर्तिम्,
कृत्वाऽम्बिके! तत् प्रकरोति काऽन्या?।।२८।।

विद्यासु शास्त्रेषु विवेक - दीपे–
ष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या?
ममत्व - गर्त्तेऽति - महाऽन्धकारे,
विभ्रामयत्येतदतीव विश्वम्।।२९।।

रक्षांसि यत्रोग्र - विषाश्च नागाः,
यत्रारयो दस्यु - बलानि, यत्र।
दावानलो यत्र तथाऽब्धि - मध्ये,
तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम्।।३०।।

विश्वेश्वरि! त्वं परिपासि विश्वम्,
विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम्।
विश्वेश - वन्द्या भवती भवन्ति,
विश्वाश्रया ये त्वयि भक्ति - नम्राः।।३१।।

देवि! प्रसीद परि - पालय नोऽरि - भीते–
र्नित्यं यथाऽसुर - वधादधुनैव सद्यः।
पापानि सर्व - जगतां प्रशमं नयाशु,
उत्पात - पाक - जनितांश्च महोप - सर्गान्।।३२।।

प्रणतानां प्रसीद त्वं, देवि! विश्वार्ति - हारिणि!।
त्रैलोक्य - वासिनामीड्ये, लोकानां वरदा भव।।३३।।

***

श्रीदेवी-उक्ति

ॐ

।।पूर्व-पीठिका—श्रीदेव्युवाच।।

वरदाऽहं सुर - गणा!, वरं यन्मनसेच्छथ।
तं वृणुध्वं प्रयच्छामि, देवानामुप - कारकम्।।०१।।

।।देवा ऊचुः।।

सर्वा - बाधा - प्रशमनं, त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि!।
एवमेतत् त्वया कार्यमस्मद् - वैरि - विनाशनम्।।०२।।

।।मूल-पाठ—श्रीदेव्युवाच।।

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते, अष्टा-विंशतिमे युगे।
शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येते महाऽसुरौ।।०१।।

नन्द-गोप-गृहे जाता, यशोदा-गर्भ-सम्भवा।
ततस्तौ नाशयिष्यामि, विन्ध्याचल-निवासिनी।।०२।।

पुनरप्यति - रौद्रेण, रूपेण पृथ्वी - तले।
अवतीर्य हनिष्यामि, वैप्रचित्तांस्तु दानवान्।।०३।।

भक्षयन्त्याश्च तानुग्रान्, वैप्रचित्तान् महाऽसुरान्।
रक्ता दन्ता भविष्यन्ति, दाडिमी-कुसुमोपमाः।।०४।।

ततो मां देवताः स्वर्गे, मर्त्य- लोके च मानवाः।
स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति, सततं रक्त-दन्तिकाम्।।०५।।

भूयश्च शत-वार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि।
मुनिभिः संस्तुता भूमौ, सम्भविष्याम्ययोनिजा।।०६।।

ततः शतेन नेत्राणां, निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन्।
कीर्तयिष्यन्ति मनुजाः, शताक्षीमिति मां ततः।।०७।।

ततोऽहमखिलं लोकमात्म - देह - समुद्भवैः।
भरिष्यामि सुराः शाकैरावृष्टेः प्राण-धारकैः।
शाकम्भरीति विख्यातिं, तदा यास्याम्यहं भुवि।।०८।।

तत्रैव च वधिष्यामि, दुर्गमाख्यं महाऽसुरम्।
दुर्गा-देवीति विख्यातं, तन्मे नाम भविष्यति।।०९।।

पुनश्चाहं यदा भीमं, रूपं कृत्वा हिमाचले।
रक्षांसि भक्षयिष्यामि, मुनीनां त्राण-कारणात्।।१०।।

तदा मां मुनयः सर्वे, स्तोष्यन्त्यानम्र-मूर्तयः।
भीमा-देवीति विख्यातं, तन्मे नाम भविष्यति।।११।।

यदाऽऽरुणाख्यस्त्रैलोक्ये, महा-बाधां करिष्यति।
तदाऽहं भ्रामरं रूपं, कृत्वाऽसंख्येय-षट्-पदम्।।१२।।

त्रैलोक्यस्य हितार्थाय, बधिष्यामि महाऽसुरम्।
भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्वतः।।१३।।

इत्थं यदा यदा बाधा, दानवोत्था भविष्यति।
तदा तदाऽवतीर्याऽहं, करिष्याम्यरि-संक्षयम्।।१४।।

***

अनुक्रम

ध्यायेन्नित्यां महा-देवीं,
मूल-प्रकृतिमीश्वरीम्।
ब्रह्मा-विष्णु-शिवादीनां,
पूज्यां वन्द्यां सनातनीम्।।

***

श्रीनारायणी-स्तुति-व्याख्या

।।पूर्व-पीठिका—ऋषिरुवाच।।

टीका—ऋषि बोले—

व्याख्या—'**ऋषि**' से यहाँ '**सुमेधा**' अर्थात् '**प्रज्ञ आत्मा**' का तात्पर्य है। यही '**प्रज्ञात्मा**' व्यष्टि-रूप में '**जीवात्मा**' अर्थात् '**पाश-बद्ध जीव**' को '**विमर्श-शक्ति**' के रूप में यथार्थ '**विशेष ज्ञान**' कराता है और समष्टि-रूप में अपने योग्य '**प्रतिनिधि**'-द्वारा जीवों को '**सद्-विमर्श**' देता रहता है।

देव्या हते तत्र महाऽसुरेन्द्रे,
सेन्द्राः सुरा वह्नि - पुरो - गमास्ताम्।
कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्ट - लाभाद्,
विकाशि - वक्त्रास्तु विकाशिताशाः।।१।।

टीका—वहाँ '**देवी-द्वारा**' सर्व-श्रेष्ठ '**असुराधिप**' के मारे जाने पर '**इन्द्रादि**' देवताओं ने '**वह्नि-देव**' को मुखिया बनाकर मनोरथ-पूर्ति होने पर प्रसन्न-मुख और विकशित आशा अर्थात् दिशाओं को प्रकाशित करनेवाली अथवा अपनी-अपनी आशा-रूपी काम-कलिका को विकसित करनेवाली '**कात्यायनी**' (भगवती) को तुष्ट अर्थात् प्रसन्न किया।

व्याख्या—'**तत्र**' से '**समर-भूमि**' का बोध होता है। इस '**भूमि**' को '**धर्म-क्षेत्र**' या '**कर्म-क्षेत्र**' कह सकते हैं। **पञ्च-प्राण-रूपी आत्मा के द्योतक पञ्च-पाण्डवों** का इसी '**क्षेत्र**' में अन्धे '**धृतराष्ट्र**' अर्थात् '**अज्ञान**' (अविद्या) के '**सौ पुत्रों**' या बहु-संख्यक '**अनात्माकार वृत्ति-रूपी दुर्योधन**' आदि '**आत्माकार**' और '**अनात्माकार वृत्तियों**' से '**युद्ध**' होता आ रहा है।

इसी का नाम '**महर्लोक**' या '**अनाहत-चक्र**' या '**हृदय**' है। इसी की एक संज्ञा '**लङ्का**' है—'**लक् वेदने-अच्-नुम**', जिसका शब्दार्थ है—**संवेदन-स्थान**। इसीलिए '**दैव-सर्ग-नायक आत्मा-रूपी राम**' से '**रावण**' अर्थात् '**आसुरी सर्ग-नायक**' या '**अनात्माकार-वृत्ति-रूपी असुरों**' के नायक मूर्तिमान् '**अहङ्कार**' का युद्ध हुआ था।

'**महाऽसुरेन्द्र**' से **सर्व-श्रेष्ठ असुर या आसुरी सर्गों के नायक** अर्थात् मूल प्रधान '**अहङ्कार**'-स्वरूप '**शुम्भ**' का बोध होता है। '**अहङ्कार**' ही मूल '**अविद्या**' है, जिसके सहकारी हैं—'**ममता, दर्प, क्रोध, काम, लोभ**' इत्यादि। यदि '**अहन्ता**' या '**अपराहन्ता**' भाव रहे, तो '**ममता, क्रोधादि**' सहकारी '**अनात्माकार-वृत्तियाँ**' स्वतः नहीं रहेंगी। इसी से '**असुरेन्द्र**'-पद का प्रयोग किया गया है।

'देवी' से **'क्रीड़ा'** या लीला-शीला **'परमा-सत्ता'** का बोध होता है। **'लीला'** अकेले एक से नहीं हो सकती। **'लीला-भूमि-परिमाण'** के अनुसार ही **'पात्रों के परिमाण'** की आवश्यकता होती है। उसमें भी **'लिङ्ग'** या **'लक्षणा-वैपरीत्य'** की आवश्यकता होती है। जिस प्रकार अकेले **'ऋणी'** (निगेटिव) विद्युत्-सर्ग से काम नहीं चलता और **'धनी'** (पोज़िटिव) **'विद्युत्-सर्ग'** की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार **'आत्म-शक्ति'** को क्रीड़ार्थ **'आत्माकार'** और **'अनात्माकार'**—दोनों **'वृत्तियों'** की आवश्यकता होती है। इन्हीं दोनों **'परस्पर-विरोधी'** सर्गों के द्वारा **'आत्म-शक्ति'** खेलती रहती है। इसी से इसका नाम है–**'देवी'**।

'इन्द्र'—**'इदि धारणे—रन् उणादि'** अनेकार्थ-वाचक पद है। यहाँ यह **'एकादश इन्द्रियों'** के अधि-पति **'आत्मा'** का द्योतक है। **'इन्द्रिय इन्द्र—इयच्'** पद के अर्थ से ऐसा ही बोध होता है। इसी **'इन्द्र'** के समास-रूप की **'वेदों'** ने स्तुति की है—

'योगे योगे नवस्तर वाजे वाजे हवामहे। सखाय इन्द्र-मूर्तये'—ऋग्वेद १।३०।७।

उक्त **सखा** या **मित्र-भाव** की स्तुति है। ठीक है, **'आत्मा'** ही तो अपना बन्धु है—**'आत्मैव ह्यात्मनो बन्धु'**—गीता।

सेना-नायक के रूप में **गीता** की उक्त स्तुति की भाँति **ऋग्वेद** की यह स्तुति है—

'वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंश-मुदवा भरे भरे।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्रशत्रूणां मघवन् वृष्ण्या रुजः॥'

संक्षेप में **'इन्द्र'**-रूपी **'आत्मा'** की माता-पिता, ज्ञान-दाता आदि सभी रूपों में **'वेदों'** ने स्तुति की है। इसी प्रकार **'सेन्द्राः'** पद से **'आत्मा-सहित एका-दश इन्द्रियों'** का बोध होता है।

'सेन्द्राः सुराः' पद का विशेषण **'वह्नि-पुरोगमाः'** पद है। यद्यपि **'इन्द्र'** देव-गण या दैवी सर्गों का या **'एकादश इन्द्रियों'** का मुखिया है, तथापि यहाँ **'वह्नि'** को ही **'अग्र-गामी'** बनाया गया है। इसमें भी रहस्य है।

यहाँ **'वह्नि'** से भूत-वह्नि या **'भूताग्नि'** का तात्पर्य नहीं है। यहाँ वह्नि **'वह—नि उणादि'** से **'धारिका शक्ति'** का तात्पर्य है। शास्त्रों ने, विशेषतः **'तन्त्र-शास्त्र'** ने, इसे ऐसा ही माना है। वेदों ने इसकी सभी रूपों में स्तुति की है—**'अग्नि-मीळे पुरोहितम्'** (ऋ० १।१।१)।

यहाँ पुरोहित **'पुरस्-हित'** अर्थात् **'प्रथम मित्र'** के रूप में है क्योंकि **'धर्म'** ही **'जीव'** का सर्व-प्रथम **'मित्र'** या पूर्व-जन्मान्तरों का मित्र है अथवा **'हित'** पद का अर्थ है **'धारित'**।

फिर इसकी स्तुति **'शिव, सखा, ऋषि'** कहकर की गई है—

'त्वमग्ने! प्रथमो अङ्गिरा ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवः सखा॥'—(ऋ० १।३१।१)।

यही '**देव-गण**' का कवि है अर्थात् '**वाक्-शक्ति**' है—

'**त्वमग्ने! प्रथमो अङ्गिरस्तमः कविर्देवानां परिभूषसि व्रतम्**'—(ऋ० १।३१।२)।

संक्षेप में यह '**संविदग्नि**' या '**ज्ञानाग्नि**' के रूप में मुखिया है।

इस '**संविदग्नि**' के '**तेज**' से ही '**देव-गण**' विशिष्ट या विशेष रूप से काशित या '**दीप्त-मुख**' हैं। '**विकाशि-वक्त्राः**' से अन्तर्मुखी '**अखण्डाकार- वृत्तिवालों**' का बोध होता है। बात ठीक है। '**अविद्या**' के दूर हो जाने पर ही '**प्रसन्नता**' '**प्रकृष्ट सन्नता—सद् गमने मिलने वा**' अर्थात् '**तादात्म्य**' होता है।

'**विकाशिताशाः**' पद के दोनों अर्थ हैं, जैसे टीका में कहे गए हैं। जिनकी '**आशाएँ**' विकसित अर्थात् विशेष रूप से '**दीप्त**' हो गई हैं। इससे ऐसा बोध होता है कि जिनसे '**दशों दिशाएँ**' प्रफुल्लित हो गई हैं अर्थात् सर्वतोमुखी '**प्रकाश-मयत्व**' या '**ज्योतिर्मयत्व**' इनमें आ गया है। अथवा जिनकी '**आशाएँ**' या '**कामनाएँ**' विशेष रूप से '**प्रदीप्त**' हो गई हैं। तात्पर्य कि '**इष्ट-लाभ**' अर्थात् वर्तमान '**कामना-पूर्ति**' से भावी '**आशा-पूर्ति**' भी निश्चित दीख पड़ने लगी है।

'**कात्यायनी**' (**कातस्य गोत्रस्यापत्यं स्त्री कात्यायनी**) पद यहाँ '**दुर्गा**'-बोधक है, न कि '**कात्यायन**' मुनि की कन्या का।

परमा-सत्ता '**दुर्गा**' के तो अनेक रूप हैं। '**सप्तशती**' में ही तीन रूपों का प्रतिपादन है—
१. महा-काली, २. महा-लक्ष्मी और ३. महा-सरस्वती।

प्रस्तुत **नारायणी स्तुति**— '**उत्तम चरित**' की है, जिसकी नायिका '**महा-सरस्वती**' या '**महा-वाक्-शक्ति**' है। '**कात्यायनी**' पद से '**वाक्-शक्ति**' का ही बोध होता है। इसके शब्दार्थ से भी ऐसा ही बोध होता है। '**कात**' नाम '**गोत्र**' का है। '**गोत्र-पद**' का, जो '**गु-शब्दे-त्र उणादि**' से बनता है, अर्थ है—'**वाग्-रूपिणी रक्षण-कर्त्री**' अर्थात् जिसके उच्चारण मात्र से '**रक्षा**' हो (इसी भाव का अर्थ है '**गायत्री**'-पद का-'**गायति त्रायते च।**')

अथवा गोत्र '**गां पृथ्वीं त्रायते**' का अर्थ है—**पृथ्वी या विश्व की** '**रक्षा**' करनेवाली। पहलेवाला अर्थ अधिक युक्त है, क्योंकि '**दुर्गा**'-पद के '**उच्चारंण**' मात्र से सभी प्रकार की आपदाओं से '**रक्षा**' होती है। इसीलिए **कात्यायनी**-पद की '**दुर्गा**' विशेष पर्याय-वाचक संज्ञा है। '**देवी-पुराणोक्त**' इसकी परिभाषा है—

'कं ब्रह्म कं शिरः प्रोक्तमश्म-सारं च कं तम्।
धारणाद् वासनाद् वापि तेन कात्यायनी मता॥'

देवा ऊचुः ॥२॥

टीका—देवता कहने लगे—

व्याख्या—'**समष्टि-भाव**' में विश्व के सभी '**बहिः**' और '**अन्तः**' परिचालक '**इन्द्रिय-गण**' या तत्-तत् इन्द्रिय-अधिष्ठात्री '**सत्ताएँ**' सम्मिलित होकर एक स्वर में '**अखण्डाकार-वृत्ति**' में आकर '**मनन**' करते '**श्रावण-क्रिया**' करने लगे। यह '**श्रावण**' (सुनाने की क्रिया) केवल दूसरों के ही लिए नहीं, अपितु स्वयं सुनानेवाले के बारम्बार '**मनन**' करने के निमित्त भी है। '**व्यष्टि-भाव**' में '**जीवात्मा**' के प्रति '**अन्तरात्मा**' या '**प्रज्ञात्मा**' के उद्‌गार का यह परिचायक है, जब सभी '**इन्द्रियाँ**' (मन-सहित) '**आत्मा**' के पूर्ण अधीन हो जाती हैं।

एक विशेषता इसमें यह है कि '**वह्नि-देव**' को पुरोगामी बनाकर भी '**सेन्द्र**' **देव-गण** स्वयं '**स्तवन**' करते हैं। इसका यह कारण है कि '**वह्नि**' ही **परम शक्ति** का '**मुख**' है—'**तस्या अग्निरेव मुखम्**'—श्रुति। '**विद्वत्व**' आदि का '**विसर्ग**' है—'**विद्वत्वादीनां तत्र निसर्गादेव वृत्तेः**'।

तात्पर्य यह है कि '**तैजस्**' **शक्ति** के द्वारा ही '**वाक्-शक्ति**' में स्पन्दन होकर '**वैखरी**'-रूप में '**वाक्**' व्यक्त होती है। इसी कारण '**इन्द्रादि**' देवता अर्थात् कुल **इन्द्रियों के सहित इन्द्रियों के राजा इन्द्र** अर्थात् आत्म '**तैजस्**' द्वारा '**वाक्-शक्ति**' को '**स्पन्द-शीला**' कर '**पश्यन्ती**' और '**मध्यमा**'-वाक् को '**वैखरी**'-रूप में लाकर '**स्तुति**' करते हैं। इसका अनुभव उन्हीं साधकों को होगा, जो '**वह्नि-बीज**' से कुण्डली या '**जीव-शक्ति**' को '**शुद्ध**' और '**प्रदीप्त**' कर सकते हैं।

देवि! प्रपन्नार्त्ति - हरे! प्रसीद,
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।
प्रसीद विश्वेश्वरि! पाहि विश्वम्,
त्वमीश्वरी देवि! चराचरस्य।।१।।

टीका—हे देवि! शरणागत की '**आर्त्ति**' अर्थात् दुःख हरनेवाली! '**प्रसन्न**' होओ। विश्व की '**रक्षा**' करो। हे देवि! तुम '**चर**' और '**अचर**' अर्थात् चलनेवाले और स्थिर रहनेवाले दोनों की '**स्वामिनी**' हो।

व्याख्या—'**देवि**' पद से यहाँ '**दिव् प्रकाशे**'—प्रकाश करनेवाली या '**ज्ञान**' देनेवाली '**महा-विद्यात्मिका सत्ता**' का बोध होता है। '**महा-सरस्वती**' से '**प्रकाश-शक्ति**' के प्रवाह का बोध होता है, जिससे '**अविद्या-तम**' या **अविद्या-जनित अन्धकार** अर्थात् '**अज्ञान**' दूर होता है। **सरस्वती** की '**योग-वाशिष्ठी**' परिभाषा है—'**सरणात् सर्व-दृष्टीनां, कथितैषा सरस्वती**'—निर्वाण प्रकरण, उत्तरार्ध ८४।१२।

'**प्रपन्नार्त्ति-हरे**'—'**प्रपन्नों**' की '**आर्त्ति**' को हरनेवाली। '**प्रपन्न**'—**प्र—पद् गमने—क्त**' का शब्दार्थ है—'**प्रकृष्ट**' रूप से गया हुआ। प्रश्न है कि किस भाव से गया हुआ? '**द्वैत-बुद्धि**' से या '**अद्वैत-बुद्धि**' से, '**क्षणिक**' रूप से या '**नित्य**' सब प्रकार से या आंशिकतया? यथार्थ '**प्रपन्न**'

या शरणागत होने का तात्पर्य है—'**अनन्य**' होकर और सब धर्मों का परित्याग कर अर्थात् सब कुछ उसी '**एक**' में संन्यस्त कर आश्रित होना।

भगवान् कृष्ण भी ऐसा ही कहते हैं, '**सर्व-धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज**'—'गीता'।

'**अद्वैत-भाव**' में इससे '**अहन्ता**' भाव के '**लय**' का बोध होता है और '**द्वैत-भाव**' में निर्भरा **अव्यभिचारिणी** '**भक्ति**' का।

'**आर्त्ति**'—'**आङ् - ऋत् चालने-क्तिन्**' का शब्दार्थ है '**चालित**' या '**तापित**' मन की अवस्था। '**दु:ख**' या '**ताप**' से ही '**मन**' दु:खित होकर '**त्राण**' पाने को व्यग्र हो उठता है। यह '**दु:ख**' या '**ताप**' किसी भी प्रकार का क्यों न हो। संक्षेप में '**आर्त्ति**'-पद से '**भौतिक, दैविक**' और '**आध्यात्मिक**' तीनों प्रकार के '**दु:खों**' का बोध होता है। इसी भाव का द्योतक पद है—'**त्रि-जगदघ**' अर्थात् तीनों जगत् का '**पाप**'।

'**आर्त्ति-हरा**' अर्थात् '**दु:ख**' हरनेवाली एक यही है अर्थात् '**प्रकाश**' या '**विज्ञान-शक्ति**' के ज्ञान से ही सब '**पाप**' और इसके परिणाम-स्वरूप होनेवाले '**दु:ख**' या **ताप** दूर होते हैं क्योंकि इसकी '**उपासना**' अर्थात् '**सामीप्य-ज्ञान**'—**भोगदा** और **पर-भोगदा** (मोक्षदा)—'**दोनों**' हैं।

'**प्रसीद**'—'**प्र-प्रकर्षेण-सद् गमने लोट्**' का शब्दार्थ है—'**प्रसन्न होओ**'। इससे अन्तस्तात्पर्य है कि खूब अच्छी तरह से मुझमें मिल जाओ अर्थात् '**तादात्म्य**' कर लो।

'**अखिलस्य जगत: मात:! प्रसीद**'—अखिल अर्थात् '**अखण्ड**' या समस्त जगत् अर्थात् '**सम्यक्**' प्रकार से अर्थात् '**क्रमानुसार**' नियमित रूप से चलनेवाले दृश्यमान निरामय '**ब्रह्म**' के रूप की '**माता!**' प्रसन्न होओ।

यहाँ '**माता**'-पद अनेकार्थ-वाचक है। '**माता**' से उपादान-भूता जननी या '**सावित्री**' का बोध होता है। फिर इससे एतद् भाव की मान-कर्त्री '**शक्ति**' का भी बोध होता है। फिर '**मान्यते इति माता, मान् पूजायाम्**'—तात्पर्य कि **समस्त** '**जगत्**' **की पूज्या** या '**आराध्या**' **शक्ति** का इससे बोध होता है। फिर '**माति परिच्छिन्नति इति माता**'—तात्पर्य कि अपने '**गर्भ**' में समस्त '**जगत्**' को '**परिच्छिन्न**' कर रखनेवाली का बोध होता है।

उक्त भाव में '**योग-वासिष्ठ**' के शब्दों में ऐसा बोध होता है—'**अशून्यमिव यच्छून्यं यस्मिन् शून्ये जगत् स्थितम्**' अर्थात् अशून्य-सदृश्य जो **शून्य** है और जिस **शून्य** में ही '**जगत्**' है। इसी से इसको '**विश्व-गर्भा—विश्वो यस्या गर्भे अस्ति**' कहते हैं। इसी हेतु '**गीता**' कहती है—'**सर्वञ्च मयि पश्यति।**'

यहाँ '**अखिल**' पद का प्रयोग अहैतुक नहीं है। पद के एक देश अर्थात् अंश-दग्ध हो जाने पर भी '**पटो दग्ध:**' ऐसा प्रयोग होता है। इसी '**एक-देशत्व-भाव**' का निरास करनेवाला और '**समस्त**' या अपरिच्छिन्नत्व का सूचक है—'**अखिल**' पद का प्रयोग।

'विश्वेश्वरि! प्रसीद'—हे विश्व की ईश्वरि!, प्रसन्न होओ। **'विश्व'** से स्थूल-दृष्ट्या चिति-व्याप्त समस्त **'संसार'** का बोध होता है परन्तु सूक्ष्म-दृष्ट्या **सर्व-व्यापिनी 'चेतना'** का बोध होता है, जिसकी यह **'महा-चिति'—ईश्वरी** या **'स्वामिनी'** है।

अथवा **'विश्वों'** की, जिनकी **'संख्या दस'** है, **स्वामिनी**—ऐसा भी अर्थ हो सकता है। इस भाव में **'दश दिग्-व्यापिनी'** सत्ताओं की **'अधीश्वरी'** है, ऐसा बोध होता है। **'व्यष्टि-भाव'** में **'पञ्च ज्ञानेन्द्रिय'** और इनकी **'पञ्च-तन्मात्राओं'** की अधिष्ठात्री **'दश सत्ताओं'** की **'स्वामिनी'** है—ऐसा बोध होता है।

'ईश्वरी'—'ईश शासने-वरट्-ङीप्' का शब्दार्थ ही है—**'शासन'** करनेवाली।

'ईश्वर' की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ हैं। जहाँ **'सांख्य'** में **'ईश्वर'** का विकृत सीमित-रूप है; **'योग-दर्शन'** में सीमा-रहित रूप होता हुआ भी पूर्ण **'अस्पष्ट'** रूप है; **'न्याय'** में **'सगुण'** व ससीम रूप है, वहाँ **'वेदान्त'** में **'विश्व-व्यापक सत्ता'** के रूप में प्रतिपादित है।

'तन्त्र-शास्त्र' में अर्थात् **'शाक्त-वेदान्त'** के अनुसार **'ईश्वर'**-पद से उपहित चेतनात्मक **'महा-चिति'** के द्वितीय रूप का बोध होता है। **'जगन्माता'** का रूप **'जगत्-सवित्री'** है और **'ईश्वरी'** के रूप में **'धरित्री'** या **'पालन-कर्त्री'** है, ऐसा तात्पर्य है। इसी कारण इसकी **'प्रसन्नता'** की आवश्यकता **'पाहि विश्वम्'** पद से स्पष्ट होती है।

'पाहि' पद से **'संरक्षण'** और **'पोषण'—'क्रिया-द्वय'** का तात्पर्य है। यह तो सर्व-विदित है कि **'पालन-क्रिया'** बिना **'रक्षण-क्रिया'** पूरी नहीं होती। अब **'विश्वं पाहि'** अर्थात् **'विश्व'** की रक्षा करो—इस उक्ति से यह तात्पर्य है कि **'विश्व'** की विकास-शृङ्खलता या **'विकास'-क्रम की रक्षा करो** (**'विकास'**-क्रम को आंग्ल भाषा में **'कोर्स आफ इवाल्यूशन'** कहते हैं। **'इनवाल्यूशन'** से ही रक्षा करनी है)। वस्तुतः पूर्णत्व का परिचय पाना ही **विकास** या **'इवाल्यूशन'** है। इसमें **'रक्षण'** से **'खण्डाकार वृत्त्यात्मक'** होने से बचाने का तात्पर्य है। **'समष्टि-रूप'** में **'समष्टि'** के निमित्त प्रार्थना है।

'चराचरस्य' पद में समाहार द्वन्द्व समास में ऐसा रूप है—**'चरं च अचरं च तयोः'**, जिसका अर्थ है **'चर'** भी हैं और **'अचर'** भी हैं—इन **'गुण-द्वय'**-विशिष्टों की। फिर दूसरा भी समास है। यह **'निर्धारणे षष्ठी'** है, जिससे गुण-पृथक्ता-वश पृथक्-पृथक् **'पदार्थों'** का बोध होता है। अस्तु, संक्षेप में इस पद से **'तीन'** प्रकार के **'पदार्थों'** का बोध होता है। एक **'चर'** अर्थात् **'जङ्गम'** या चलनेवाले चैतन्य जीव, दूसरा **'अचर'** अर्थात् **'स्थावर'** या स्थिर रहनेवाले अर्ध-चैतन्य जीव और तीसरा **'दोनों गुणों के सम्मिश्रित'** धर्मी जीव। अथवा इससे **'जाग्रदवस्था, स्वप्नावस्था'** और **'सुषुप्तावस्था'**-गत जीवों का बोध होता है।

आओ शाक्त-बन्धु! हम भी इसी प्रकार स्व-स्थित '**चेतना-शक्ति**' से प्रार्थना कर अपनी-अपनी दौड़ती '**बहिर्मुखी**' वृत्तियों को '**अन्तर्मुखी**' बना कर अपने-अपने क्षुद्र '**विश्वों**' की रक्षा करें।

आधार - भूता जगतस्त्वमेका,
मही - स्वरूपेण यतः स्थिताऽसि।
अपां स्वरूप - स्थितया त्वयैत—
दाप्यायते कृत्स्नमलंघ्य - वीर्ये!।।२।।

टीका—तुम्हीं '**एक**' (समस्त) '**जगत्**' की '**आधार-स्वरूप**' हो क्योंकि '**पृथ्वी**'-स्वरूप से स्थित हो। हे अपार शक्तिवाली! '**जल**'-स्वरूप से स्थित तुमसे ही यह '**कृत्स्न**' अर्थात् जगत् आप्यायित अर्थात् '**तर्पित**'—संवर्धित होता है।

व्याख्या—उक्त पद्य में '**आधार-भूता**' होने से '**चिति-शक्ति**' की '**व्यापकता**' दर्शित होती है—'**देव्या यया ततमिदं जगदात्म-शक्त्या, निःशेष-देव-गण-शक्ति-समूह-मूर्त्या।**'

यहाँ '**दो**' देव-शक्तियों—'**मही**' व '**अपां**' का उल्लेख है। '**एका**' पद से इस '**महा-शक्ति**' की '**निर्द्वन्द्वता**' का बोध होता है, जैसा कि इसने स्वयं '**अहङ्कार**' अर्थात् अपराहन्ता-रूपी '**शुम्भ**' से कहा है—'**एकैवाहं जगत्यत्र, द्वितीया का ममापरा?**', जिससे '**पराहन्ता**' का बोध होता है और जिसमें ही '**अहन्ता**' या '**शुम्भ**' का लय हुआ।

आधार '**आ—समन्ताद् धारयति इति आधारः**' अर्थात् सब प्रकार से '**धारण**' करनेवाले से '**अधिकरणता**'-प्राप्त '**व्यक्ति**' का बोध होता है, न कि जैसा हम साधारणतया स्थूल-दृष्ट्या किसी '**धार्य**' वस्तु के नीचे से टेकनेवाले '**पदार्थ**' को '**आधार**' समझते हैं। यथा—हम '**पौराणिक**' कथनानुसार '**पृथ्वी**' के आधार से '**शेष-नाग**' को समझते हैं, परन्तु यथार्थतः '**सूर्य**' की '**आकर्षण-शक्ति**' ही '**पृथ्वी**' का आधार है क्योंकि इसी '**आकर्षण शक्ति**' (**मैग्नेटिक पावर**) से '**पृथ्वी**' की स्थिति है, अन्यथा यह (पृथ्वी) कभी-न-कभी उच्छृङ्खल होकर अन्य '**ग्रहों**' से टकराकर '**चूर्ण-विचूर्ण**' हो जाती।

'**मही**'—'**मह—इ—ङीप्, मह पूजायाम्**' नाम '**पृथ्वी**' का भी है। '**पृथ्वी**' जिस प्रकार सब पदार्थों—सब तत्त्वों आदि को '**धारण**' करनेवाली है, उसी प्रकार तुम भी '**सत्-असत्, चित्-अचित्**' आदि सब वस्तुओं को '**मही-स्वरूपा**' अर्थात् विराट्-रूपा हो '**धारण**' करती हो। इसी कारण इस '**शक्ति**' की एक संज्ञा '**जगद्धात्री**' है।

उक्त '**महा-धात्री**' की '**धारण-शक्ति**' के अनुभव का किञ्चित् आभास हम अज्ञानियों को इसकी '**पृथ्वी-मूर्ति**' देखकर मिलता है। जिस प्रकार '**मृत्तिका**'-रूप में '**पञ्च-तत्त्वों**' को अर्थात् सभी पदार्थों को अपने में रखा है, उसी प्रकार तुम्हारे '**विराट्**' रूप के '**मातृ-क्रोड़**' (गोद) में '**हम**

सब' भले और बुरे, नित्य और अनित्य आदि हैं। तात्पर्य कि '**तुमसे**' भिन्न नहीं हैं। ऐसी ही '**धारणा**' करनी होती है।

इस पूर्वार्ध-पद से हमको '**मातृ-क्रोड़**' की '**महिमा**' मातृ-निर्विषमता—'**कु-पुत्रे सत्पुत्रे नहि भवति मातुर्विषमता**' अर्थात् '**समान वात्सल्य-भाव**' आदि का बोध होता है।

'**अपां स्वरूपे**' अर्थात् '**जलों**' के रूप में। यहाँ उस '**आप्**' या जल का बोध होता है, जो '**विश्व**' की सृष्टि के हेतु '**अग्नि**' को अपने '**गर्भ**' से जनता है—'**आपो ह यद् वृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम्**—(ऋ० १०।२१।७)।

'**आप्**' वह '**सोम**'-रूपी अपस् है, जो '**सूर्य, पृथ्वी**' आदि समस्त '**नक्षत्रों**' को आप्यायित कर बलवान् करता है—'**सोमेनादित्या बलिनः, सोमेन पृथिवी मही अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे, सोम आहितः**' (ऋग्० १०।८५।२)।

संक्षेप में उक्त '**अपां स्वरूप**' से **१. ज्योति, २. रस** और **३. अमृत**—'**तीन ब्रह्म-रूपों**' का बोध होता है—'**ॐ आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म**'।

पूर्व-कथित '**सोम**' ही, '**रस**' और '**अमृत**' है। इस '**आप्**' की—'**आपो वा इदं सर्वं; सम्राडापो विराडापः स्वराडापः सत्यमापः आप ओं**'—इन '**श्रौत**' परिभाषाओं से हमें पता चलता है कि '**महा-चिति**' ने किस प्रकार '**आप्**'-रूप में '**विश्व**' को व्याप्त कर रखा है। यही '**विश्व**' का प्राण है, जो '**विश्व**' को सार्वंशिक भाव से '**प्राण-रस**' से ओत-प्रोत कर रखता है। अन्यथा इसकी '**स्थिति**' ही न रहती। इतना ही नहीं, विश्व की सृष्टि ही नहीं होती। हम '**तान्त्रिक**' जो '**स्व-देह स्थित स्वेष्ट**' का '**तर्पण**' करते हैं, उससे अपनी '**प्राण-शक्ति**' को आप्यायित कर '**बलवती**' करते हैं।

'**अलंघ्य-वीर्या**' अर्थात् अपार शक्तिवाली इस हेतु कही गई है कि इसके '**वीर्य**' या शक्ति का ज्ञान किसी को भी नहीं है। इसी हेतु '**सप्तशती**' में '**इन्द्रादि**' देव-गणों की '**असकृत्**' अर्थात् अनेक उक्तियाँ हैं—'**यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो ब्रह्मा हरश्च नहि वक्तुमलं बलञ्च**', '**किं वर्णयाम तव रूपमचिन्त्यमेतत् किं चातिवीर्यम्**', '**न ज्ञायसे हरि-हरादिभिरप्यपारा**', '**केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य**' इत्यादि।

आओ शाक्त बन्धु! यदि हम यथार्थतः '**शाक्त**' होना चाहते हैं, तो '**गुरु-मुख**' से कौशल सीख कर '**अचिन्त्य**' और '**अलंघ्य महा-शक्ति**' के अल्पतम ज्ञान का अनुभव स्व-स्थित '**शक्ति-ज्ञान**' के द्वारा प्राप्त करने का प्रयत्न करें। तात्पर्य कि '**षट्-चक्रों**', के '**मूलाधार**' और '**स्वाधिष्ठान**' चक्रों का रहस्य-ज्ञान और वहाँ '**कुण्डलनी**' की आरोहण-क्रिया सीखकर '**पृथ्वी**' और '**जल-तत्त्व**' के '**ज्ञान**' का स्वानुभव करें। इसी से उक्त '**अचिन्त्य**' और '**अपार महा-शक्ति**' का यत्-किञ्चित् पता पा सकते हैं।

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्त - वीर्या,
विश्वस्य वीजं परमाऽसि माया।
सम्मोहितं देवि! समस्तमेतत्,
त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्ति - हेतुः।।३।।

टीका—हे देवि, तुम अनन्त सामर्थ्यवाली '**परमात्म-शक्ति**' हो। (फिर) तुम परमोत्कृष्ट '**माया**' (के रूप मे) '**विश्व**' का वीज या '**कारण**' हो। (तुमसे) यह समस्त '**विश्व**' सम्यक् प्रकार से '**मोहित**' है। (अतएव) तुम्हीं '**प्रसन्न**' होने से संसार में '**मुक्ति**' का कारण हो।

व्याख्या—'**देवी**'-पद से यहाँ **व्यावहारिका** '**शक्ति**' का बोध होता है—'**देवयति सर्वान् प्रवृत्ति-निवृत्त्युपदेशेन व्यवहारयति इति देवी**' क्योंकि यही '**एक**' अपने को आवृत कर, जीव को सम्मोहित कर, प्रवृत्ति करानेवाली '**प्रवर्त्तिका**' **शक्ति** भी है और '**प्रसन्न**' होकर प्रकृष्ट रूप से गता अर्थात् **हृद्–गता** हो अपने स्वरूप को बोधित कराकर निवृत्ति–कारिणी अर्थात् '**मुक्ति-दायिका**' शक्ति भी है।

'**अनन्त-वीर्या**' द्व्यर्थ–वाचक पद है। '**वीर्य**' का अर्थ '**सामर्थ्य**' और '**वीज**' दोनों है। ये '**दोनों अर्थ**' उपयुक्त हैं। यह '**अनन्त**' अर्थात् **असीम शक्तिवाली** भी है और **अनन्त** या '**असंख्य**' पदार्थों की वीज–स्वरूपा या '**कारण-स्वरूपा**' भी है। इस पद से '**अनन्त-प्रभावा**' का बोध होता है। यह '**सगुण ब्रह्म-शक्ति**' का एक विशेष लक्षण है।

'**वैष्णवी-शक्ति**' अनेकार्थ–वाचक पद है। '**विष्ण विश—नु उणादि**' के '**रौढ़िक**' और '**योग-रौढ़िक**'—दोनों अर्थ हैं। प्रायः यह कहना अयुक्त नहीं होगा कि '**रौढ़िक**' अर्थ विशेषतया '**कल्पित**' हैं, यद्यपि ये भी '**निराधार**' नहीं हैं। तथापि '**योग-रौढ़िक**' अर्थ से ही '**रहस्यार्थ-ज्ञान**' की प्राप्ति होती है। '**रौढ़िक**' भाव में '**विष्णु**' अनेक हैं और अनित्य हैं। यहाँ '**व्यापनाद् विष्णुः**' का ही तात्पर्य है अर्थात् इस पद से **सर्व–व्यापिनी** '**महा-शक्ति**' का बोध होता है।

'**परमा माया**' अर्थात् '**महा-माया**' से सर्व–श्रेष्ठा—'**मीयते अनया इति माया**' अथवा '**विश्वं वा स्वं माति परिच्छिन्नति इति माया**' का बोध होता है।

अथवा '**योग-वासिष्ठ**' के शब्दों में—'**चित्तं जीवो मनो माया, प्रकृतिश्चेति नामभिः।**' साधारणतया '**मन**' ही '**माया**' है अर्थात् '**व्यष्टि-मन**'—**माया** है। इस प्रकार '**परमा माया**' से '**समष्टि-मन**' का बोध होता है। भेद इन दोनों में यह है कि जहाँ '**व्यष्टि**' में **माया**—'**जीव**' में '**अज्ञान**' का कारण होकर '**बन्धन**' का कारण होती है, वहाँ '**समष्टि**' में '**आवरण**' मात्र का काम कर रह जाती है और '**पर-जीव**' या '**महा-जीव**' एवं '**ब्रह्म महा-जीवो विद्यतेऽन्तादि-वर्जितः**'—(योग-वासिष्ठ) इस '**महा**' या '**परमा माया**' से विकृत नहीं होता। '**अव्याकृता हि परमा**···' (चण्डी)।

अथवा 'परमा' से 'परमात्म' (शक्ति) 'मान' या 'जीव-भाव' से 'विच्छिन्नीकरण' होता है। उसी का नाम 'परमा' है—'परः परमात्मा मीयते जीव-भावेन विच्छिद्यते अनया इति परमा'। इसी भाव में विश्व का 'बीज' कही गई है।

'माया' ऐसा जटिल प्रश्न है कि 'शाक्त-वेदान्त' के सिवा और किसी ने इसको ठीक से नहीं समझा। भगवान् कृष्ण ने इसी कारण इसको 'दुरत्यया' कहा है—'मम माया दुरत्यया'—(गीता)।

संक्षेप में माया का परिचय यही है कि यह 'धर्मी'—मूला शक्ति (ब्रह्म) का वह रूप है, जो अपने को 'त्रिगुणों' से वेष्टित कर 'लीला' करती है—'देवात्म-शक्तिः स्व-गुणैर्निगूढा।'

'विश्वस्य वीजम्'—विश्व का वीज 'विशेषेण जायते अनेनेति वीजम्'। ऐसा भगवान् कृष्ण ने भी कहा है—'यच्चापि सर्व-भूतानां, वीजं तदहमर्जुन!' (गीता १०।३९)।

'वीज' से किसी 'एक कारण' का बोध नहीं होता है। इससे सभी प्रकार के निमित्त, उपादानादि 'कारणों' का बोध होता है। वस्तुतः 'ब्रह्म' वीज-सदृश ही है, जैसा कि 'योग-वासिष्ठ' कहता है—'ब्रह्म सर्वं जगद्-वस्तु, पिण्डमेकमखण्डितम्। फल-पत्र-लता-गुल्म-पीठ-वीजमिव स्थितम्' (उत्पत्ति-प्रकरण, ६७।३६)।

इसीलिए 'ब्रह्म' अर्थात् 'महा-चिति' या 'महा-सत्ता' से, जो 'ब्रह्म, परमात्मा' आदि नामों से पुकारी जाती है—'महा-चिदेकैवास्तीह, महा-सत्तेति योच्यते।···सा ब्रह्म परमात्मादि-नामाभिः परिगीयते।' (योग-वासिष्ठ, निर्वाण प्र० पू० ७८।३४), सभी का 'प्रभव' कहा गया है, जिससे 'सर्व' अर्थात् अखिल 'विश्व' का प्रवर्तन या विशेष रूप से वर्तन 'विवर्त' होता है—'अहं सर्वस्य प्रभवो, मत्तः सर्वं प्रवर्तते' (गीता)।

संक्षेप में उक्त 'विश्वस्य वीजम्' पद से 'आद्या शक्ति' या 'आदि-शक्ति' का बोध होता है, जिसका उल्लेख 'योग-वासिष्ठ' में इन शब्दों में किया है—'वीजं जगत्सु ननु पञ्चक-मात्रमेव, वीजं परा-व्यवहित-स्थिति-शक्तिराद्या।' (उत्पत्ति प्र०, ११।३२)। यही पद 'हेतुः समस्त-जगताम्' पद का पर्याय-वाचक है।

अथवा 'विश्व' नाम 'विष्णु' का है। इस प्रकार 'विष्णु' बीज है—'जनितोत विष्णोः' (श्रुति)। इससे 'व्यापिनी-शक्ति' का 'वीज' अर्थात् 'पर-बिन्दु' है, ऐसा बोध होता है।

'सम्मोहितम्'—सम्यक् प्रकार से 'मोहित' अर्थात् 'अयथार्थ ज्ञान' से 'बाधित'। इस पद से एकाधिक तात्पर्यों का बोध होता है। 'मोहित' या मुग्ध कई कारणों से होता है। 'यथार्थ' और 'अयथार्थ' तथा 'अपूर्ण ज्ञानी' सभी 'मुग्ध' होते हैं। साधारणतया इसी 'सम्मोहन-क्रिया' से 'प्रपञ्च' की स्थिति है। यदि यह 'सर्व-मोहिनी शक्ति' न रहती, तो 'भगवती' की 'लीला' या खेल न चलता। संक्षेप में 'त्रैलोक्य-मोहन-चक्र' के वासनार्थ से 'सम्मोहिनी-शक्ति' का बोध होता है।

'**विश्व**' की '**सम्मोहितावस्था**' का उल्लेख '**भगवान् कृष्ण**' ने इस प्रकार किया है—

'आश्चर्य-वत् पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्य-वद् वदति तथैव चान्य:।
आश्चर्य-वच्चैनमन्य: शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चिद्।।'
(गीता २।२९)।

उक्त बात '**अपूर्ण यथार्थ ज्ञानियों**' की है। '**पूर्ण ज्ञानियों**' की भी '**सम्मोहितावस्था**' होती है। यह '**अखण्डाकार-वृत्ति**' की एक '**केन्द्रीय स्थिति**' का द्योतक होता है। अज्ञान-जनित '**सम्मोहन**' का तात्पर्य है—**स्व-स्वरूप की विस्मृति**। ऐसा '**श्रुति**' भी कहती है—

'**अनीशया शोचति मुह्यमाना: अविद्यायामन्तरे वर्तमाना: जघन्यमाना अपियन्ति मूढा:।**'

'**प्रसन्न**' होने से **मुक्ति-कारण-स्वरूपा** हो। '**प्रसन्न**' से प्रकृष्ट रूप से गता अर्थात् विदिता अर्थात् **स्वरूप-बोध** होने पर या **तादात्म्य-भाव** होने पर ही **विद्या** या '**परा-विद्या-रूपिणी**' होने के कारण '**मुक्ति**' का कारण हो—'**विद्ययाऽमृतमश्नुते**', '**तामेव विदित्वाऽति-मृत्युमेति, नान्य: पन्था विद्यतेऽयनाय**' (**श्रुति**)।

विद्या: समस्तास्तव देवि! भेदा:,
स्त्रिय: समस्ता: सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्ब! एतत्,
का ते स्तुति: स्तव्य - परा परोक्ति:।।४।।

टीका—हे देवि ! '**विश्व**' में जितनी '**विद्याएँ**' हैं, ये तुम्हारे ही भेद हैं और '**स्त्रियाँ**' जितनी हैं, ये तेरी ही '**कलाओं**' से युक्त हैं। अथवा जितनी '**विद्याएँ**'—जितनी '**स्त्रियाँ**' हैं, ये '**सभी**' तुम्हारी ही '**कलाओं**' से युक्त तुम्हारे ही '**भेद**' अर्थात् विभिन्न '**मूर्तियाँ**' हैं। तुम '**अम्बा**' से ही यह विश्व परिपूरित है। इस अवस्था में तुम्हारी क्या '**स्तुति**' अर्थात् किस प्रकार स्तुति हो सकती है? क्योंकि तुम '**स्तव-परा**' अर्थात् '**अशक्त-स्तव्या**' या '**स्तुति**' से '**परे**' हो और उक्ति अर्थात् वाक्यों से परे हो, अवस्थिता हो।

व्याख्या—हे देवि, '**दिव् प्रकाशे**' अर्थात् हे '**प्रकाश-शक्ति**' ! जितनी विद्या '**विद्यन्ताभिरिति विद्या:**' अर्थात् '**संवित् शक्ति-समूह**' हैं, ये तुम्हारे ही '**परा-संवित्-रूपिणी**' के भेद हैं।

'**भेद**' से '**भिन्न-स्वरूपा**' का बोध नहीं है। जिस प्रकार '**विद्या**' से '**विद् ज्ञाने**' मात्र का बोध नहीं है अपि च '**विद् लाभे**' और '**विद् सत्तायाम्**' का भी बोध है, उसी प्रकार '**भेद**' से पृथक्ता का ही बोध नहीं है, अपितु मूलैका '**बहु-स्वरूपत्व**' का बोध होता है। यह '**निर्द्वन्द्वता**' का बोधक है, न कि '**द्वन्द्वत्व**' का। यह '**अभेद-रूप**' भेद है, जो असली स्वरूप से पृथक् नहीं है—'**अभिन्न-रूपा भिन्नाऽपि, स्वरूपान्नैव भिद्यते**'।

संक्षेप में यह '**भेद**' सापेक्षक है, न कि निरपेक्षक। फिर '**वेद्य**' ही '**विद्या**' है, जिसकी '**श्रौत**' परिभाषा है—'**यया तदक्षरमधिगम्यते सा विद्या।**'

ऐसा '**योग-वासिष्ठ**' भी कहता है—'**यद् वेत्सि तदसौ देव! येन वेत्सि तदप्यसौ**' (उत्पत्ति प्र०, ९।७४)।

'**विद्या**'-पद इस प्रकार बड़ा '**व्यापक**' है। प्रत्येक '**शब्द**', प्रत्येक '**वस्तु**' एक परमाणु-पर्यन्त '**विद्या**' ही है, क्योंकि सभी से एक अद्वितीया '**परमा सत्ता**' का बोध होता है। इस प्रकार '**विश्व**' की सभी वस्तु '**विद्या**' ही है। इनमें प्रधान '**वेद**' आदि '**अष्टादश**' हैं। ये सब उसी एक '**महा-विद्या**' या '**महा-वेद्या**' के '**प्रकाशात्मक**' रूप हैं। इसमें सन्देह नहीं—'**एकस्तथा सर्व-भूतान्तरात्मा-रूपं प्रति-रूपो बहिश्च**' (कठ)।

अधिक क्या, यही '**अविद्या**' भी है, जैसा कि '**श्रुति**' भी कहती है—'**विद्याऽहमविद्याऽहम्**'। छोटी-छोटी '**विद्याएँ**' भी यही है। यह किसी प्रकार का आश्चर्य या अयुक्त नहीं है। सभी '**स्त्रियाँ**' इसी '**कला**' से युक्त, इसी के '**भेद**' या '**स्वरूप**' हैं। ऐसा '**शक्ति-सङ्गम तन्त्र**' के निम्न वचन से भी पता चलता है—

नारी त्रैलोक्य-जननी, नारी त्रैलोक्य-रूपिणी।
नारी त्रिभुवनाधारा, नारी देह-स्वरूपिणी।।

'**स्त्री**'-पद से यहाँ केवल स्त्री-लिङ्ग-विशिष्ट '**जीव**' का ही बोध नहीं होता। इससे समस्त '**शब्द**'-कारक '**स्पन्दात्मक**' पदार्थों का भी बोध होता है—'**स्त्र्ये शब्दे-ड्रट उणादि-ङीप्**'।

इस प्रकार तात्पर्य यह है कि इस '**महा-चिति**' ने '**विद्या**' अर्थात् '**अर्थ-स्वरूप**' और '**स्त्री**' अर्थात् '**शब्द**'-**स्वरूप** में समस्त '**विश्व**' को व्याप्त कर रखा है। यही '**महा-वाक्य**'—'**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**' का यथार्थ तात्पर्य है। वैसे '**स्त्री**' से केवल '**स्त्री-लिङ्ग**'-विशिष्ट '**जीव**' के तात्पर्य से '**पुल्लिङ्ग-विशिष्ट**' जीव अपवाद-ग्रस्त हैं, जिससे '**ब्रह्म**' के '**सर्वत्व**' में दोष आता है। यह सच होते हुए भी स्थूल-दृष्ट्या भी '**स्त्रियों**' की कई एक ऐसी विशिष्टताएँ हैं, जिनसे ये '**पुरुषों**' की अपेक्षा विशिष्ट '**कलावती**' सिद्ध हैं। सर्व-प्रथम विशिष्टता है-'**जन्माद्यस्य (विश्वस्य) यतः**' अर्थात् '**सवित्री**' अर्थात् '**उत्पन्न**' करनेवाला यही रूप है, न कि '**पुं-रूप**'। फिर '**स्तन्य-पान**' कराकर '**पालन**' या स्थिति बनाए रखनेवाली भी यही है। '**पुरुष**' इसका सहकारी मात्र है। '**स्त्री-तत्त्व**' बड़ा गहन है। इसके ज्ञाता **परमहंस रामकृष्णदेव** हो गए हैं, जो अपनी विवाहिता '**स्त्री**' को भी '**मातृ**'-रूप ही समझते थे।

'**नारी-तत्त्व, नारी-मन्त्र, नारी-जप, नारी-योग**' और '**नारी-तप**' से बढ़कर कोई '**तत्त्व, कोई मन्त्र, कोई जप, कोई योग**' और '**कोई तप**' नहीं है (**शक्ति-सङ्गम तन्त्र**)—

न नारी-सदृशो योगो, न नारी-सदृशो जपः।
न नारी-सदृशं मन्त्रं, न नारी-सदृशो तपः।।

'**स्त्री**' की '**रुष्टता**' और '**तुष्टता**' से ही '**देवता**' रुष्ट या तुष्ट होते हैं। देखिए, वृहत्-पाराशर स्मृति—

स्त्रियस्तुष्टाः स्त्रियो रुष्टास्तुष्टा रुष्टाश्च देवताः।
वर्धयन्ति कुलं तुष्टा, नाशयन्त्यपमानिता।।

'**का ते स्तुतिः?**' का शब्दार्थ है '**तुम्हारी स्तुति क्या है?**' ठीक इसी भाव का सूचक '**कर्पूरादि-स्तोत्र**' का यह पद्य है—

'धरित्री कीलालं शुचिरपि समीरोऽपि गगनम्।
त्वमेका कल्याणी गिरीश-रमणि कालि! सकलम्।।
स्तुतिः का ते मातः!'

ऐसा क्यों कहा गया है। संक्षेप में इससे ऐसा बोध होता है कि भगवती—'**स्तुत्य**' भी है और '**स्तुति**' भी है। तब इस '**अभेदावस्था**' में '**स्तुति**' कैसे हो अर्थात् दूसरी '**स्तुति**' तो है नहीं, जिससे '**स्तवन**' या गुण-गान हो। इससे '**स्तुत्य**' का '**निर्गुणत्व**' सिद्ध होता है और साथ ही '**वाग्-गोचरत्व**' भी सिद्ध होता है, जैसा आगे कहा जाता है।

अथवा मुख्य गौण '**सङ्कीर्तन**' का नाम '**स्तुति**' है। यहाँ सर्व-स्वरूपा-रूप में गौण शक्ति के अभाव-वशतः '**स्तुति**' असम्भव है—'**वेद-वाक्यरवेद्यस्य कुतः स्तोत्रं विधीयते**'—(**शङ्कराचार्य**)।

'**स्तव्य-परापरोक्तिः**'—इस पद के एकाधिक अर्थ हैं। '**स्तव्य-परा च उक्तेः परा च**' ऐसा भी रूप हो सकता है और यह पद '**स्तुति**' का विशेषण भी हो सकता है अर्थात् '**स्तव्य**' (तुम्हारी) '**परा**' और '**अपरा**' उक्ति-रूपिणी '**स्तुति**'।

संक्षेप में, उक्त पद से ऐसा बोध होता है कि भगवती '**स्तवन-योग्यावस्था**' से परे है अर्थात् '**अनाख्यावस्थावाली**' होने से '**स्तव्य-परा**' है और उक्ति अर्थात् '**वचन**' से परा है। अथवा इसके सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं जा सकता। अथवा यह स्वयं '**परा-वाक्-स्वरूपिणी**' है और '**अपरा-वाक्**' अर्थात् '**पश्यन्ती, मध्यमा**' तथा '**वैखरी**' वाक्-स्वरूपिणी है। इस अवस्था में अन्य '**वाक्**' के अभाव-वशतः इसकी '**स्तुति**' किस प्रकार हो सकती है। इसी कारण '**कर्पूरादि-स्तोत्र**' में '**वदामस्ते किं वा—**' उक्ति भी है। फिर '**सकलमपि किं स्तौमि भवतीं**' जैसी उक्ति भी है।

अतएव '**स्तुति**' की परिभाषा '**श्रुति**' में है—'**मौनं स्तुतिः**'—(**मण्डल ब्राह्मण**)। इस '**मौन**' से उपसंहार-रूपी '**चिन्तन**' का बोध होता है, जैसा कि '**श्रुति**' कहती है—

'**परा पश्यन्त्यादि-निखिल-शब्दानां नाद-द्वारा ब्रह्मणि उपसंहार-चिन्तनेन स्तोत्रम्**'—(**भावनोपनिषत्**)।

आओ शाक्त बन्धु! हम भी '**मौन**' होकर '**माँ**' में सब शब्दों का लय कर '**स्तुति**' करना सीखें।

सर्व - भूता यदा देवी, स्वर्ग-मुक्ति - प्रदायिनी।
त्वं स्तुता स्तुतये का वा, भवन्तु परमोक्तय:।।५।।

टीका—जब तुम '**सर्व-स्वरूपा**' होती हुई '**ईश्वरी**' (के रूप में) '**स्वर्ग**' और '**मुक्ति**' देनेवाली हो, ऐसी '**स्तुता**' होने पर (इससे) अधिक क्या कहा जाए अर्थात् अधिक नहीं कहा जा सकता। अथवा जब तुम '**परमा**' सर्व-भूतान्तरात्मा '**ब्रह्म-रूपिणी**' स्वर्ग-मुक्ति देनेवाली देवी '**ईश्वरी**' कही गई हो, तो सभी '**उक्तियाँ**' तुम्हारी ही '**स्तुति**' की हेतु हों।

व्याख्या—'**सर्व-भूता**' से **निर्द्वन्द्वा** '**विश्व-रूपा**' का बोध होता है। यही लक्षण '**ब्रह्म**' का अर्थात् **निर्गुणात्मिका परमा** '**सर्व-व्यापिनी**' सत्ता का है।

उक्त पद्य में भगवती '**महा-चिति**' के '**सर्व-मयत्व**'-रूप में स्तुति का समर्थन है। इसको '**त्रिगुणात्मिका**' मानकर और '**स्वर्ग**' अर्थात् '**अर्थ, धर्म, काम**' और '**मोक्ष**' देनेवाली '**सत्ता**' में ले आकर '**स्तुति**' की भूमिका बाँधी गई है क्योंकि इसी '**सगुणात्मक**' रूप में '**स्तुति**' करना **सुकर** है।

'**देवी**' से यहाँ '**ईश्वरी**' अर्थात् **स्वामी-भावमापन्ना** '**माया-नियन्त्री**' सत्ता का बोध होता है। '**ईश्वरी**' से तात्पर्य है—'**धर्मी**' शक्ति की वह विशिष्ट '**धर्म-शक्ति**', जिससे यह अपनी सिसृक्षा-वश '**माया**' का नियन्त्रण करती है—'**निर्गुणाऽपि परमात्म-शक्ति: माया-नियन्तृतया सिसृक्षा-वशादाविष्कृतेश्वर-भाव:।**'

'**स्वर्ग-मुक्ति-प्रदायिनी**' या **स्वर्गापवर्ग-दायिनी** से '**व्यवसायात्मिका**' और '**अव्यवसायात्मिका**' बुद्धि-दात्री है, ऐसा बोध होता है। जो इसको जिस रूप में भजता है, उसको यह वैसी ही '**बुद्धि**' देती है, जिससे ईप्सित फल मिलता है। '**गीता**' कहती है—'**ददामि बुद्धि-योगं तं, येन मामुपयान्ति ते**'।

पुन: गीता कहती है—'**लभते च तत: कामान्, मयैव विहिता हितान्। देवान् (स्वर्ग) देव-यजो यान्ति, मद्-भक्ता यान्ति मामपि ।।**'

तात्पर्य कि सब कुछ यही है अर्थात् '**द्रष्ट्री**' भी है, '**भोक्त्री**' भी है, '**निर्गुणा**' भी है, '**सगुणा**' भी है । इस अवस्था में '**परमोक्ति**' हो ही नहीं सकती। अथवा जो कुछ भी कहा जाता है, सब '**तुम्हारी**' ही '**स्तुति-स्वरूप**' है। इस भाव में प्रमाद-वश '**अविहित स्तुति**' की '**मार्जनोक्ति**' का तात्पर्य है।

यह तो सर्व-विदित है कि '**भक्ति**' साधक को मुखर अर्थात् '**भाव**' प्रकट करने को बाध्य कर ही देती है। इसमें अज्ञान-वश अनुपयुक्त उक्ति का समावेश अवश्यम्भावी है, जिसके लिए

क्षमा-प्रार्थना की आवश्यकता होती है। ऐसी प्रार्थना प्रायः सभी स्तुतियों में समाविष्ट होती है। यथा '**कर्पूरादि स्तोत्र**' के '**तथापि त्वद्-भक्तिर्मुखरयति चास्माकमसिते! तदेतत् क्षन्तव्यं न खलु पशु-रोषः समुचितः**' इस पद से बोध होता है।

सर्वस्य बुद्धि - रूपेण, जनस्य हृदि संस्थिते!।
स्वर्गापवर्गदे देवि, नारायणि! नमोऽस्तु ते।।६।।

टीका—हे **नारायणि!** सब जनों के अन्तः-स्थल में '**बुद्धि-रूपिणी**' होकर अवस्थान करनेवाली (रहनेवाली) '**स्वर्ग**' और '**अपवर्ग-मोक्ष**' देनेवाली देवि! तुमको प्रणाम।

व्याख्या—'**देवि नारायणि**' पद से एकाधिक तात्पर्यों का बोध होता है। '**देवी**'-पद के सदृश '**नारायणी**' पद भी अनेकार्थ-वाचक है। यहाँ '**देवी**' से '**चिति-शक्ति**' का और '**नारायणी**' पद से '**सर्व-व्यापिनी**' सत्ता का बोध होता है—'**नराणां समूहो नारः, तदयनं स्वाधिष्ठान-भूमिः यस्याः।**'

अथवा इससे विशिष्ट ज्ञान से ज्ञात होनेवाली '**परमा सत्ता**' का बोध होता है, जब कि '**नार**' का अर्थ '**विज्ञान**' है—'**नारं विज्ञानं तत अयनं आधारो यस्याः सा नारायणी।**'

'**जन**' पद भी अनेकार्थ-वाचक है। '**जन**' से **मनुष्य, विश्व,** विश्व का अंश जन-लोक, '**सृष्ट**' आदि का बोध होता है। यहाँ '**विश्व**' के '**भूतों**' का बोध होता है। इस प्रकार '**सर्व-भूत**' के हृद्-देश में अवस्थित है, ऐसा बोध होता है, जैसा कि '**गीता**' भी कहती है—'**ईश्वरः सर्व-भूतानां, हृद्-देशेऽर्जुन! तिष्ठति।**'

'**योग-वाशिष्ठ**' इस भाव को इन शब्दों में व्यक्त करता है—'**परमार्क-वपुर्भूत्वा प्रकाशान्तं विसारयन्। त्रिजगत् त्रसरेण्वोघं शान्तमेवावतिष्ठते॥**' (उत्पत्ति प्र०, ९।२२)।

फिर '**योग-वाशिष्ठ**' इसके सम्बन्ध में स्पष्टतया कहता है—'**एष देवः कथितो, नैष दूरेऽवतिष्ठते। शरीरे संस्थितो नित्यं, चिन्मात्रमिति विश्रुतिः**'॥ (उत्पत्ति प्र०, ७।२२)।

उक्त भाव का प्रतिपादन '**ब्रह्म-सूत्र**'—'**अन्तस्तद्-धर्मोपदेशात्**' से करता है।

'**श्रुति**' भी '**तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्**' आदि वाक्यों में ऐसा कहती है। इससे '**अन्तरात्मा**' का बोध होता है।

'**हृदि**' का शब्दार्थ है हृदय में। '**हृदय**' के दो शब्दार्थ हैं। एक तो यह है कि जो विषय अर्थात् वासनाओं से हर लिया गया है—

'**हृदिति ह्रियते-विषय-वासना-जालैरिति हृदयं-अन्तःकरणम्**'।

दूसरा अर्थ है कि जो विषयों को हरण करता है—'**हरति विषयान् इति हृदयम्**'।

पहले अर्थ से मलिन या '**अशुद्ध अन्तःकरण**' का और दूसरे अर्थ से '**शुद्ध अन्तःकरण**' का बोध होता है।

'योग-वाशिष्ठ' भी कहता है—**'साधो! जगति भूतानां, हृदयं द्विविधं स्मृतम्। उपादेयं च हेयं च, विभागोऽयं तयो शृणु ।।'** (उपशम प्रकरण, ७८।३३)।

संक्षेप में **'हृदि'** पद का अन्तस्तात्पर्य है—**हृत्पुण्डरीक** या **'अन्तराकाश'**। इसका एक अपना अधिकरण है। **'ब्रह्म-सूत्र'** में इसको **'दहराधिकरण'** कहा गया है। विशद ज्ञान के हेतु **'ब्रह्म-सूत्र'** का **'शक्ति-भाष्य'** देखें।

'बुद्धि-रूपेण'—बुद्धि रूप से। इसका उल्लेख **'देवी-सूक्त'** में इन शब्दों में हुआ है—**'या देवी सर्व-भूतेषु, बुद्धि-रूपेण सस्थिता'**। अस्तु, **'बुद्धि'** उसी का नाम है, जिससे अर्थात् जिस शक्ति-द्वारा किसी वस्तु का बोध या ज्ञान होता है—**'बुद्ध्यते अनया इति बुद्धिः।'** इसकी **'तान्त्रिक'** संज्ञा है—विमर्श-शक्ति। यही **'मुक्ति'** और **'बन्धन'** का कारण है। इसी को **प्रेरिका शक्ति** या **'काली'**—**'कलयति प्रेरयति इति काली'** भी कहते हैं।

'सस्थिता' का शब्दार्थ है—सम्यक् प्रकार से अर्थात् भले प्रकार से **'स्थिता'**—रही हुई। यह इस एक की **सर्ग-रूप शृङ्खला-क्रम** से अवस्थिति का द्योतक पद है। इसे आंग्ल भाषा में **'ला आफ युनिफार्मेटी'** कहते हैं। **'गत्यर्थात् कर्म कश्लिष् शीङ्-स्थासेत्यादिना सम्पूर्वान्तिष्ठतेः क्तः'**।

'स्वर्गापवर्गदा' अर्थात् **'स्वर्ग'** और **'अपवर्ग'** अर्थात् **'मोक्ष'** देनेवाली। वैसे तो पूर्व पद्य में इस लक्षण का उल्लेख रहने से यहाँ पुनरुक्ति है, परन्तु जहाँ **'मुक्ति'** पद **'नित्य'** और **'अनित्य'** दोनों प्रकार की **'मुक्ति'** का वाचक है, वहाँ **'अपवर्ग'**—कैवल्य-मुक्ति या **'नित्य-मुक्ति-वाचक'** पद ही है। **'स्वर्ग'** से क्षयिष्णु या **'अनित्य सुख'** का बोध होता है, जैसा कि **'श्रुति'** कहती है—

'यन्न दुःखेन सम्भिन्नं, न च ग्रस्तमनन्तरम्। अभिलाषोपनीतं यत्, तत् सुख स्वः पदास्पदम्।'

'ते नमः अस्तु' अर्थात् तुम्हारा (तुझमें) **'नमन'** या प्रणाम हो। ये **'नमन'** या नमस्कार **'दो प्रकार'** के हैं। एक अभिवादन-रूप **'द्वैत-भाव'** का और दूसरा **'अद्वैत-भावाश्रित'** तादात्म्य-सूचक। तात्पर्य दोनों का एक ही है। भेद इतना ही है कि जहाँ **'द्वैत-भाव'** में आंशिक प्रपन्नता है, वहाँ **'अद्वैत भाव'** में **'ज्ञान-जन्य'** पूर्ण प्रपन्नता के कारण विषयों से परावर्तन कर एक अपने इष्ट में प्रवणता-रूप प्रणाम है।

'श्रौत' अर्थ इसका है—सोऽहं भाव। **'सोऽहं भावो नमस्कारः'**—(मण्डल ब्राह्मण)।

शङ्कराचार्य के शब्दों में प्रणाम को संवेश अर्थात् सम्यक् प्रकार से एक हो जाना कह सकते हैं—**'प्रणामः संवेशः।'**

आओ शाक्त बन्धु! हम भी सम्यक् प्रकार से **'प्रपन्न'** होकर **'माँ'** को **'नमस्कार'** करना सीखें। **'मनसा कर्मणा वाचा'**—मन से, कर्म से और वचन से प्रणाम करना ही **'वास्तविक'** प्रणाम है, अन्यथा यह क्रिया **'आडम्बर'** मात्र है।

कला-काष्ठादि - रूपेण, परिणाम - प्रदायिनि!।
विश्वस्योपरतौ शक्ते, नारायणि! नमोऽस्तु ते।।७।।

टीका—हे **कला** और **काष्ठा** आदि रूपों से (विश्व का) परिणाम अर्थात् अन्त फल देनेवाली, **हे विश्व की अवसान-कालिका शक्ति नारायणि!** तुमको प्रणाम।

व्याख्या—उक्त पद्य में सर्व-व्यापिनी निर्द्वन्द्वा अपरिच्छिन्ना '**मूला-शक्ति**' को '**परिच्छिन्न**' करनेवाली और '**विश्व-लय-कारिणी**' के रूप का प्रति-पादन है।

'**कला**' नाम आधुनिक '**काल**' या समय-विभाजक '**सेकेण्ड**', '**मिनट**' आदि के सदृश प्राचीन '**काल-विभाग**' का है। '**तीस निमेष**' की एक '**कला**' होती है। '**काष्ठा**' इससे भी छोटे विभाग का नाम है क्योंकि यह '**अट्ठारह**' ही '**निमेषों**' की होती है। इस प्रकार '**कला**' और '**काष्ठा**' इन पद-द्वय से '**त्रिंशन्निमेषात्मक**' और '**अष्टादश-निमेषात्मक**' परिच्छिन्न '**काल-द्वय**' का बोध होता है। आदि से '**क्षण, मुहूर्त, होरा, पक्ष, मास, ऋतु, संवत्सर**' आदि परिच्छिन्न '**कालों**' का बोध होता है। इन्हीं के अनुसार '**विश्व**' की सभी वस्तुओं के '**परिणाम**' या अन्त (अन्त से आयु व स्थिति-काल का बोध है) और फल दीखने में आते हैं।

तात्पर्य कि यह '**काल-शक्ति**' अर्थात् '**काल**' **की प्रेरिका** '**शक्ति**' (**महा-काली**) इन कल्पित समयांशों अर्थात् परिच्छिन्न या सीमित काल के रूपों के परिणामों में प्रत्येक वस्तु के '**पर्यवसान-फल**' दिखाती रहती है, जिससे इसके '**संसृति-क्रम**' में '**व्यत्यास**' नहीं आ सकता और **जगत्**—'**संसार**' कहलाता है अर्थात् सम्यक् प्रकार से, शृङ्खला-बद्ध होकर '**सरण**' करता है—चलता है। इस सत्ता की '**योग-वासिष्ठी**' संज्ञा है '**नियति**', जिसकी परिभाषा है—(निर्वाण प्र० उ०, ३७ सर्ग)

कालेन नर्त्तकेनैव, क्रमेण परि - शिक्षिताः।
यैषा पर - पराभासा, सैषा नियतिरुच्यते।।
आ-महा-रुद्र-पर्यन्तमिदमित्थमिति स्थितेः।
आ-तृणा-पद्मज-स्पन्द-नियमान्नियतिः स्मृता।।

अतः कला '**कलयतीति कला**' अर्थात् '**कलन**' करनेवाली से '**सृजन, संहरण, प्रेरणा**' आदि शक्तियों का बोध होता है। इस प्रकार विविध '**शक्ति**' और '**काष्ठा**' अर्थात् चरम '**धर्मी-शक्ति**' के रूप में जैसा '**श्रुति**' कहती है-'**सा काष्ठा सा परा गतिः।**' यह परिणाम को प्रकृष्ट रूप से देनेवाली है, ऐसा बोध होता है।

'**कला**'-पद से जहाँ '**कला-शक्ति**' का बोध होता है, वहाँ '**काष्ठा**' से '**दिक्-शक्ति**' का बोध होता है—'**गगनात्मकस्य भीम-नामकस्य सदा-शिवस्य पत्नी स्वर्ग-माता देवी दिक्-स्वरूपत्वात् काष्ठेत्युच्यते।**'

इस प्रकार मुख्य धर्म-शक्ति-द्वय—'**काल-शक्ति**' और '**दिक्-शक्ति**' एवं '**आदि**'-पद से सूचित अप्रधान '**शक्ति-समूह**' के रूप में यही एक '**परिणाम-प्रदायिनी**' है, ऐसा बोध होता है।

'**विश्वस्योपरतौ**' शक्ति से '**महा-प्रलय**' करनेवाली '**रौद्री-शक्ति**' अर्थात् '**योग-वाशिष्ठ**' आदि ग्रन्थ-प्रसिद्धा '**काल-रात्रि**' और '**तन्त्र-शास्त्र**'-प्रसिद्धा '**काली**' का बोध होता है। इसी को '**कार्ष्णी महा-शक्ति**' कह सकते हैं-'**कर्षणात् कृष्णा।**'

संक्षेप में इससे '**प्रलय**' करनेवाली '**सत्ता**' और '**प्रलय**' के पश्चात् जो '**नित्या**'—अपरिणामिनी '**सत्ता**' रह जाती है, इन दोनों का बोध होता है। यह उसी '**महा-शक्ति आद्या**' का द्योतक है, जिसका प्रतिपादन '**सुधा-धारा-स्तव**' में इस प्रकार किया गया है—

'यदा नैव धाता न विष्णुर्न रुद्रो, न काली न वा पञ्च-भूतानिला सा।
तदाकारिणी भूत-सत्वैक-मूर्तिः, त्वमेका पर-ब्रह्म-रूपेण सिद्धा॥'

ऐसी द्वि-रूपा '**महा-सत्ता**' अर्थात् '**काल**' या कला-सत्ता-रूपिणी, जिससे '**घटता, पटता, त्वत्ता, मत्ता**' आदि कहलानेवाली नानाकृतियाँ होती हैं और विलीन होती हैं तथा महा-सत्ता-रूपिणी '**नारायणी**' अर्थात् **प्रत्येक नर या जीव में रहनेवाली** को नमस्कार है। इस भाव की '**नमन-क्रिया**' से ही '**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**' के ज्ञान का परिचय होता है।

सर्व-मङ्गल-माङ्गल्ये!, शिवे! सर्वार्थ-साधिके!।
शरण्ये! त्र्यम्बके! गौरि!, नारायणि! नमोऽस्तु ते।।८।।

टीका—हे सब मङ्गलों या कल्याणों की कल्याण करनेवाली **हे शिवे! सब कार्यों की करनेवाली! हे आश्रयणीया! हे त्रिनयना! हे गौरी! हे नारायणि!** तुमको प्रणाम हो।

व्याख्या—मङ्गल '**मङ्गन्ति मंग्यन्ते वा मङ्गलानि**' अनेकार्थ-वाचक पद है। '**मगि**' धातु का, जिससे '**अलच् उणादि**' युक्त कर '**मङ्गल**'-पद बनता है, प्रयोग गमन-क्रिया, समर्पण-क्रिया आदि में है। इस '**सर्व-मङ्गल-माङ्गल्ये**' पद में एकाधिक समास भी हैं। '**सर्वेषां मङ्गलानां मङ्गल्या**' अथवा '**सर्वेभ्यो मङ्गलेभ्यो मङ्गल्या**' या '**सर्व-मङ्गला चासौ मङ्गल्या**' (**पुं-वत् कर्म-धारय**)।

अस्तु, संक्षेप में इस पद से ऐसा बोध होता है कि **सब प्रकार से कल्याण करनेवाली** होने के कारण यह '**मङ्गल्या**' अर्थात् रुचिरा है। अथवा जितने कल्याण-कारक पदार्थ हैं, उन सभी का मङ्गल-विधान करनेवाली। '**सर्व**'-नाम '**शिव**' का भी है। इस प्रकार '**शिव**' की कल्याण-विधायिनी '**सत्ता**' भी यही है, जिससे '**शिव**' के '**शिवत्व**' का कारण है, ऐसा बोध होता है। '**सर्व**' से सर्वावस्था या सर्व-रूपों के बोध से ऐसा अर्थ भी है कि सभी अवस्थाओं में और सभी रूपों में यही एक '**मङ्गल**' या भलाई करनेवाली है।

'**शिवा**' पद भी अनेकार्थ-वाचक है। साधारण शब्दार्थ है, '**शिव**' की स्त्री। अब शिव '**शाम्यतीति शिवः**' की परिभाषा ये हैं—

'समा भवन्ति मे सर्वे, दानवाश्चामराश्च ये।

शिवं करोऽस्मि भूतानां, शिवत्वं तेन मे सुराः।' (महा-भारत)।

'समेधयति य नित्यं, सर्वथाऽनुपक्रमम्। शिवेति यन्मनुष्याणां, तस्मादेव शिव स्मृतः।'

फिर **'योग-वाशिष्ठी'** परिभाषा है—**'चिन्मयः परमाकाश य एव कथितो मया। एषोऽसौ शिव इत्युक्तो, भवत्येष सनातनः॥'** (निर्वाण प्र० उ०, ८२।२०)

उक्त का स्पष्टीकरण **'योग-वाशिष्ठ'** ने इन शब्दों में पूर्व ही किया है—**'शिवः सर्व-पदातीतः, सर्व-सङ्कल्पनातिगः। सर्व-सङ्कल्प-वलितो, न सर्वो न च सर्वकः। दिक्-कालाद्यनवच्छिन्नः, सर्वारम्भ प्रकाश-कृत्। चिन्मात्र-मूर्त्तिरमलो, देव इत्युच्यते मुने!॥'** (निर्वाण प्र० उ०, ३०।१२)।

अतएव उक्त लक्षणों से लक्षित **'शिव'** की सह-धर्मिणी **'शिवा'** है, ऐसा बोध होता है। **'शिवा'** का अर्थ **'मुक्ति-दायिनी'** भी है, जैसा **'देवी पुराण'** कहता है—**'शिवा मुक्तिः समाख्याता, तत्-प्रदत्वात् शिवा स्मृता।'**

अथवा **'शिवः शोभना गुणा अस्यां सन्ति सा शिवा'**। इससे **'इच्छा'** और **'वशिनी'**-शक्ति-द्वय का भी बोध होता है। **'वश कान्तौ शिवः स्मृतः कान्तिरिच्छा।'** इससे **'परमात्मा-रूपिणी'** का बोध होता है—**'परमात्मा शिवः प्रोक्तः, शिवा सैव प्रकीर्तिता।'**

'शिवा-गण' अर्थात् फेरवी-गण से वेष्टिता का बोध होता है—**'शिवाः फेरवः सन्त्यस्याः, गणत्वेन।'** जिससे **'शिवा'** से **'शिव'** भर्तृत्व-रूप में अभिन्न है—ऐसा बोध होता है—**'शिवो रुद्रोऽस्ति भर्तृत्वेन शिवा ।'**

'सर्वार्थ-साधिका' का शब्दार्थ है, सब अर्थों की अर्थात् चारों अर्थों—**'चारों पुरुषार्थों'** की साधन करनेवाली। **'देवी-भागवतोक्त'** परिभाषा है—

'धर्मादींश्चिन्तितानर्थान्, सर्व लोकेषु यच्छति। अतो देवी समाख्याता, सर्वैः सर्वार्थ-साधिनी॥'

संक्षेप में उक्त लक्षण से बोध होता है कि आप **'भोग'** और **'मोक्ष'** दोनों देनेवाली हैं। इसी हेतु आपही एक **'शरण्या'** अर्थात् शरण लेने योग्य हैं।

'शरण्या' लक्षणा का कारण पूर्व-लक्षणा से व्यक्त है। आपके अतिरिक्त और है ही कौन, जिसके शरण हम अज्ञ जन जाएँ। लौकिक व्यवहार-रूप से भी एक **'मातृ-क्रोड़'** ही हम अज्ञों के निमित्त शरण्य स्थान है क्योंकि यहाँ किसी प्रकार की विषमता नहीं है। हम **'धर्म'** न जाननेवालों का रक्षक **'धर्म'** नहीं हो सकता। हम सबको तो अपने दुष्कृत्यों का सर्वदा भय बना रहता है। आप **'स्मृता'** अर्थात् नाम लेने से ही रक्षा करती हैं। इसी हेतु आपही एक **'शरण्या'** हैं (देवी-पुराण)—

'विषाग्नि-भय-घोरेषु, शरण्यां स्मरणाद् यतः। शरण्या तेन सा देवी, मुनिभिः परिकीर्तिता॥'

'त्र्यम्बका' पद अनेकार्थ-स्थूलार्थ और सूक्ष्मार्थ दोनों वाचक है (इसकी विशद् व्याख्या **'श्री तारा-कल्पतरु'** में देखिए)। यहाँ इतना ही उल्लेख करना पर्याप्त है कि साधारणतया इस पद से **'तीन आँख'**-वाली और **'तीन व्यक्ति'** की **'अम्बा'** का बोध होता है।

'तीन आँख'-वाली से 'भूत, भविष्य' और 'वर्तमान' की साक्षिणी और 'तीन व्यक्तियों'—ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र की 'अम्बिका' अर्थात् 'माता' है। इस प्रकार इच्छा-शक्ति-बोधक ब्रह्मा, ज्ञान-शक्ति-बोधक विष्णु और क्रिया-शक्ति-बोधक रुद्र—इनकी 'माता' अर्थात् धर्मी शक्ति यह है, ऐसा बोध होता है। इस भाव से 'त्रिगुणों' की जननी 'आद्या-शक्ति' का बोध होता है।

'गौरी'-पद का शब्दार्थ है—गौर वर्णवाली, परन्तु इसका अन्तस्तात्पर्य है—सर्व-शास्त्रोक्त 'ब्रह्म' या परमा सत्ता के परम प्रकाश-मय 'रवि-तुल्य रूप' (श्रुति) आदित-वर्ण (गीता) रूप वर्ण का। इसी रूप का तन्त्र-शास्त्रों में इन शब्दों में उल्लेख है—'कोटि-सूर्य-प्रतीकाशा, कोटि-चन्द्र- निभानना।'

'गौरी'-पद 'गुरी' धातु से बना है और 'उद्यमन' में प्रयोग होता है। इसी प्रकार 'मन' जिसमें उद्युक्त अर्थात् 'आकृष्ट' हो, वह 'गौरी' है—गुरते उद्युक्ते मनोऽस्मिन्निति गौरः—ङीप् (गौरादित्वात्)।

फिर 'योग-वासिष्ठ' के कथनानुसार दृश्य के आभास से तद्-वत् क्रिया का बोध होता है—'दृश्याभासानुभूतानां करणात् सोच्यते क्रिया'। इसी आधार पर 'गौरी' की 'योग-वाशिष्ठी' परिभाषा है—'गौरी गौराङ्ग-देहत्वाद्, भव-देहानुषङ्गिणी।' (निर्वाण प्र० उ०, ८४।१३)।

अब देखना है कि पर-स्पन्दैक-रूपिणी क्रिया 'भगवती' इस 'वर्ण' को धारण कर क्या करती हैं अर्थात् 'शुक्ल वर्ण' का क्या गुण है।

इसका उल्लेख हमको 'श्रुति' (पञ्च-ब्रह्मोपनिषत्) में इस प्रकार प्राप्त होता है—

'वर्ण-शुक्लं तमो-मिश्रं, पूर्ण-बोध-करं स्वयम्। धाम-त्रय-नियन्तारं, धाम-त्रय-समन्वितम्॥
सर्व-सौभाग्यदं नृणां, सर्व-कर्म-फल-प्रदम्। अष्टाक्षर-समायुक्तमष्ट-पत्रान्तर-स्थितम्॥
यत्तत् पुरुषं प्रोक्तं वायु-मण्डले संवृतम्। पञ्चाग्निना समायुक्तं, मन्त्र-शक्ति-नियामकम्॥
पञ्चाशत्-स्वर- वर्णाख्यमथर्व-वेद-स्वरूपकम्।'

आओ शाक्त-बन्धु! हम नर-नर (घट-घट) में रहनेवाली माता 'नारायणी' की इन लक्षणाओं का मनन करते हुए 'नमन' करना सीखें क्योंकि केवल 'मन्त्र' पढ़ लेने ही से काम नहीं चलता। अतएव आवश्यकता है, 'मन्त्रार्थ' जानने की।

सृष्टि-स्थिति-विनाशानां, शक्ति-भूते सनातनि!।
गुणाश्रये गुण-मये, नारायणि! नमोऽस्तु ते।।९।।

टीका—हे नित्ये, सृष्टि-स्थिति-लय-कारिणी शक्ति! हे गुणों की आश्रया! गुण-मयी नारायणि! तुमको प्रणाम।

व्याख्या—'सनातनी' या सनातना पद 'नित्यार्थ'-बोधक है—'सनेत्यव्ययं नित्यार्थकम्। सना भाव इति सनातना'। इससे 'अपरिणामिनी' सत्ता या 'महा-सत्ता' का बोध होता है।

'**प्रलय**'–दशा में जिसका '**नाम-रूप**' नहीं रहता, उसी को '**अनित्य**' कहते हैं और जिसका '**नाम**' और '**रूप**' रहता है, वही '**नित्य**' है।

'**सृष्टि**' आदि–शक्तियों की '**भूति**' है। इससे इन '**त्रि-शक्तियों**' की धर्मी शक्ति है, ऐसा बोध होता है। तात्पर्य कि ये '**तीनों शक्तियाँ**' इसी एक की हैं। यही '**ब्राह्मी**' है, जिससे '**सृजन-क्रिया**' है। यही '**वैष्णवी**' है, जिससे पालन या '**स्थिति-क्रिया**' है और यही '**रौद्री**' है, जिससे '**संहरण-क्रिया**' है।

'**विनाश**' पद का अर्थ है, '**विकल्प**' रीति से नाश क्योंकि किसी '**पदार्थ-सत्ता**' या '**चिति-शक्ति**' का '**नाश**' नहीं होता। हम '**रूपान्तर**' को ही नाश कहते हैं, यह दूसरी बात है। अस्तु, इस '**लक्षणा**' से यही बोध होता है कि '**सृष्टि**' और '**स्थिति**' इस '**परा-शक्ति**' के '**संवेदन**' मात्र हैं और '**विनाश**' '**असंवेदन**' है—'**तस्या शक्तेः परायास्तु, स्व-संवेदन-मात्रकम्**' (योग- वासिष्ठ)।

अन्य शब्दों में ऐसा भी कह सकते हैं कि '**परा-शक्ति**' लीलार्थ स्वयं '**उदित**' होती है और '**अस्त**' को जाती है—'**रूपावलोकन-मनोमनन-प्रकाराकारास्पदं स्वयमुदेति विलीयते च**'—(योग-वासिष्ठ)। तात्पर्य कि यह जगत् की न '**सृष्टि**' करती है, न '**पालन**' करती है और न '**संहार**' करती है।

यह अपने को '**जगत्-रूप**' में प्रकट करती है, जैसा '**श्रुति**'-वाक्य है—'**एकोऽहं बहु स्याम।**'

'**योग-वासिष्ठ**' कहता है—'**स्वयं भवति रागात्मा, रञ्जको रञ्जनं रजः**'। इसी हेतु यही पुनः पुनः कहता है—'**यदिदं दृश्यते राम, तद् ब्रह्मैव जगदित्येतत् सर्वं सत्त्वावबोधतः।**'

इसी प्रकार '**सृष्टि**' या '**सर्गता**'—**ब्रह्म का विराडात्मत्व** ही है—'**ब्रह्मैवाद्यो विराडात्मा विराडात्मैव सर्गता**' (योग-वाशिष्ठ)।

'**स्थिति**' भी अपनी ही अर्थात् **लीलात्मक स्वरूप** की करती है और फिर विश्रामार्थ अपने नानाकारत्व का अपने में ही '**संहरण**' अर्थात् सीमित कर या संकुचित कर '**विनाश-क्रिया**' करती है। यह भी इसकी स्थिति है, परन्तु यह स्थिति है—'**स्वरूप-स्थिति**', जिसका नाम '**प्रलय**' है—'**अनन्त-शक्तिकस्य ब्रह्मणः**' अर्थात् '**धर्मी शक्तिकस्य स्वरूप-मात्रेण कश्चित् कालमवस्थानम्।**'

इसी से ऐसा कहा गया है—'**जायते नश्यते तथा, यदिदं याति तिष्ठति। तदिदं ब्रह्मणि ब्रह्म, ब्रह्मणा न विवर्तते।**' (योग-वाशिष्ठ)।

'**गुणाश्रया**' पद के एकाधिक अर्थ हैं। शब्दार्थ और वाच्यार्थ भी एकाधिक हैं। गुण ही आश्रय जिसके हैं, वह। फिर गुणों की आश्रय-भूता जो है, वह। इससे '**निर्गुणा**' का बोध होता है, जो अर्थ यहाँ उपयुक्त भी है। इस भाव में इस पद का ऐसा रूप है—'**गुण + अ—श्रयः न श्रयः—अश्रयः। गुणानां न श्रयः यस्याः सा गुणाश्रया**'। इस प्रकार चिद्-रूपतया निर्गुणत्व-भाव का बोध होता है।

तात्पर्य कि '**निर्गुणा**' होकर भी गुण-मयी अर्थात् '**सगुणा**' है, ऐसा बोध होता है। इससे इसका अप्रतर्क्यत्व सिद्ध होता है।

'**गुण-मयी**' का अन्य अर्थ भी है। '**मय-गतौ**' के भाव में '**मयते गच्छति प्रकटयति जगति इति मया**' अर्थात् '**विश्व**' में '**गुण**' के रूप में अपने को जो प्रकट या व्यक्त करती है। '**गुण-त्रय-स्वरूपा**' भी अर्थ है।

सांख्य-मत से '**साधर्म्य**' और '**वैधर्म्य**'-गुणों से युक्ता। गुण-नाम व्यूह या चक्र का है। इस भाव में '**व्यूहात्मिका**' या चक्रात्मिका है, ऐसा बोध होता है-'**नव-व्यूहात्मको देवः, परानन्दः परात्मकः**'।

'**नव-व्यूहों**' के नाम ये हैं-**१. काल, २. कुल, ३. नाम, ४. ज्ञान, ५ . चित्त, ६. नाद, ७. विन्दु, ८. कल्प** और **९. जीव**।

'**गुण**'-नाम '**रज्जु**' (रस्सी) का भी है। लक्षणाओं से '**नौका**' बाँधनेवाली '**रस्सी**' के तात्पर्य से ऐसा बोध होता है कि '**जीव**' को '**भव-सागर**' पार करानेवाली '**नौका**' की रस्सी अर्थात् '**अवलम्ब**'-स्वरूपा है।

शरणागत - दीनार्त्त - परित्राण - परायणे!।
सर्वस्यार्त्ति-हरे देवि!, नारायणि! नमोऽस्तु ते ।।१०।।

टीका—**हे शरण में आए हुओं की, 'दीनों' की और 'आर्त्तों'** की सब प्रकार से '**रक्षा**' करने में पटु और सबकी '**आर्त्ति**' अर्थात् पीड़ा हरनेवाली '**ईश्वरी**' नारायणि ! तुमको प्रणाम हो।

व्याख्या—उक्त पद्य में साधारणतया सभी '**जीवों**' के कष्ट हरनेवाली होने पर भी विशेषतया शरण में आए हुओं की, दीनों की और आर्त्तों की '**रक्षा**' सब प्रकार से करनेवाली हैं, ऐसा कहा गया है। शरण में आए हुए '**दीन**' और आर्त्त के परित्राण में '**परायणा**' या पटु है, ऐसा भी बोध होता है। तात्पर्य कि दीन और आर्त-द्वय लक्षणाओं से युक्त '**शरणागत**' की '**परित्राण-परायणा**' है।

'**शरणागत**' पद से किञ्चित-कालिक और आंशिक भाव से शरणागत का बोध नहीं होता। यह पद '**अनन्य भाव**' से रक्षार्थ '**शरणं गृहरक्षित्रोरिति**' (अमर-कोषः) आगत का बोधक है। इसके सम्बन्ध में पीछे तीसरे पद्य की व्याख्या में लिखा जा चुका है।

'**दीन**' पद से बुभुक्षित (भूखे), रङ्क (कङ्गाल) का बोध नहीं है, जैसा इसका वाच्यार्थ है—'**दीयन्ते क्षीयन्ते अन्नाद्यभावेन इति दीना बुभुक्षिता रङ्काः।**' '**दीन**' से अन्तस्तात्पर्य है, '**अहं-भाव**' या अहङ्कार या मद से रहित। हम '**दर्प**' या मद-रहित होने पर ही '**माता**' की कृपा के अधिकारी हैं, अन्यथा नहीं।

'**आर्त्त**' पद से कृत्रिम आर्त्त का नहीं, वरन् अकृत्रिम या **यथार्थ आर्त्त** का बोध होता है। यदि हम अपने को अकारण अथवा अनावश्यक वस्तु के हेतु **आर्त्त** या व्याकुल बना '**आर्त्ति-हारिणी**'

होलिकोत्सव वासन्तिक नवरात्र

'कौल-कल्पतरु'
चण्डी
विशेष प्रस्तुति

विशेष प्रस्तुति पुष्प-४

श्रीकुल-भूषण की 'कुल-साधना'

'चण्डी' के मानद सम्पादक
'कुल-भूषण'
पण्डित रमादत्त शुक्ल

आविर्भाव
वैशाख शुक्ला षष्ठी, सं० १९८२
(सन् १९२५)

मणिपुर-वास
शरद् पूर्णिमा, सं० २०६६
(०३ अक्टूबर, २००९)

अतिथि सम्पादक
श्रीमधुसूदनप्रसाद शुक्ल
सम्पादक
ऋतशील शर्मा
प्रकाशक
परावाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान
श्रीचण्डी-धाम, प्रयाग

'कुल-भूषण' की स्मृति में—

अब भी याद आ रहा मुझको
पञ्च-मुखी-अभियान तुम्हारा।।

मातृ-पितृ की भक्ति-शक्ति से तुमने काफी नाम कमाया।
'सम्पादक की वाणी' ने सब में साहित्यिक शक्ति जगाया।।
तुमसे और तुम्हारे बप्पा से सबने प्रोत्साहन पाया।
'सम्पादक की वाणी' में मैंने भी कुछ गीतों को गाया।।
मुझे याद आता है अब भी पत्राचार अमूल्य तुम्हारा।
अब भी याद आ रहा मुझको पञ्च-मुखी अभियान तुम्हारा।।

वाणी कल्याणी से सब का ही काफी कल्याण हुआ है।
'देवीदत्त' की 'चण्डी' द्वारा मिलती रहती शक्ति-दुआ है।।
मैं निज को नालायक कहता किन्तु आप ने लायक माना।
तभी तो मैं अब छोड़ न पाता गीत-प्रीति का दुर्लभ गाना।।
तुम्हीं ने 'वाणी-रत्न' बना के किया मधुर सम्मान हमारा।
अब भी याद आ रहा मुझको पञ्च-मुखी अभियान तुम्हारा।।

आत्म कथाएँ लिखवा करके तुमने बहुतों को झलकाया।
जिनकी न अभिव्यक्ति रही है उनकी भी बहुतों ने पाया।।
हीन-भावनाओं में भी तुमने आशा की लता लगाई।
छिपे हुए कवियों की भी तुमने दिखलाई है कविताई।।
असफलता के क्षण में भी लोगों के थे तुम एक सहारा।
अब भी याद आ रहा मुझको पञ्च-मुखी अभियान तुम्हारा।।

-'कुल-वाणी-रत्न' सुखनारायण मिश्र
'नारायण-निवास', चिल्ला गौहानी, जसरा, प्रयाग
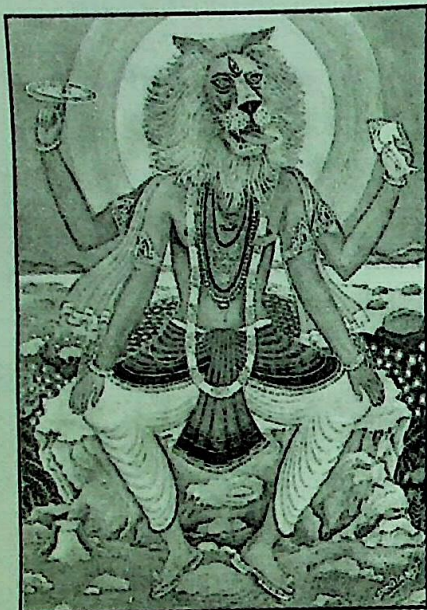
महा-पर्व होली

- 'होली' के पावन अवसर पर 'मन्त्रों' का आश्रय लेनेवाले साधकों को भगवान् नृसिंह का ध्यान कर उनकी वन्दना करनी चाहिए।
- भगवान् नृसिंह माणिक्य-पर्वत-जैसी प्रभावाले हैं और अपने तेज से राक्षसों को भयभीत कर रहे हैं।
- वे त्रि-नेत्र हैं और रत्न-जटित आभूषणों से शोभायमान हैं। दो कर-कमल घुटनों पर रखे हुए हैं और अन्य दो कर-कमलों में 'शङ्ख' और 'चक्र' धारण किए हैं।
- दाँतों द्वारा उग्र-मुख से अग्नि-शिखा के समान जिह्वा बाहर निकली हुई है। दीर्घ केशों से युक्त भगवान् नृसिंह की मैं वन्दना करता हूँ।
- इस प्रकार भगवान् नृसिंह की वन्दना करते हुए भीतरी व बाहरी आसुरी प्रवृत्तियों को मन-ही-मन नष्ट करते हुए 'पुराने संवत्' का विसर्जन कर, 'नए संवत्' का दिव्य भावों से परिपूर्ण होकर स्वागत करना चाहिए।

'मन्त्रों' अर्थात् विचारों को जाग्रत् करने का पर्व—'होली'

- 'मन्त्र'-साधना की दृष्टि से-'होलिकोत्सव' का विशेष महत्त्व है।
- साधक-'होली' की 'महा-रात्रि' में 'सोऽहम्', 'शिवोऽहम्', 'अहं-ब्रह्मास्मि' आदि महा-मन्त्रों की भावना को प्रत्यक्ष करते हुए अपने मन को एकाग्र करता है और जब प्रायः सब लोग सो जाते हैं, तब अपनी साधना में तत्पर हो जाता है।
- 'होली' की पवित्र रात्रि में-'मन्त्र'-साधना से साधकों को विशेष शक्ति की प्राप्ति होती है। 'मन्त्रों' को जाग्रत् करने के लिए-'होलिकोत्सव की रात्रि' एक श्रेष्ठ अवसर है।
- 'कशिपु' का अर्थ है-'शय्या'। 'हिरण्य-कशिपु' का अर्थ है-स्वर्ण की शय्या। इस प्रकार 'हिरण्य-कशिपु'-स्वर्ण अर्थात् धन, बल आदि से उत्पन्न होनेवाला 'महा-मद' है, जिस पर साधक सर्व-व्यापी विभु (विष्णु) के 'नृसिंह' अथवा 'नृहरि'-रूप के द्वारा 'होली' की महा-रात्रि में विजय प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।
- 'होली' की 'महा-रात्रि' में प्रायः साधक 'नृसिंह'-वीज-'क्ष्रौं'-वीज-मन्त्र का जप करते हैं।
- 'क्ष्रौं'-वीज-मन्त्र में, 'क्ष'-नृसिंह अर्थात् मानव-शरीर-धारी धर्म का सूचक है। 'र'-ब्रह्म अर्थात् व्यापकता का बोधक है। 'औ'-ऊर्ध्व-दन्त अर्थात् उच्च-से-उच्च लक्ष्य के भेदन का द्योतक है और 'ं' विन्दु-दुःख-हरण का सूचक है।
- 'क्ष्रौं'-वीज-मन्त्र से भगवान् श्रीनृसिंह की पूजा की जाती है। यथा-'क्ष्रौं श्रीनृसिंहाय देवतायै नमः' कह कर पूजा करनी चाहिए।

'होलिका'-पर्व का महत्त्व

हिन्दुओं का 'होलिका'-पर्व अति प्राचीन पर्व है। 'नव-रात्र', 'दीपावली'-महोत्सवों की भाँति यह भारत-वर्ष में आज भी सर्वत्र मनाया जाता है। 'महोत्सव'-सम्बन्धी धार्मिक शिक्षा के अभाव के कारण आज यह 'पर्व' बहुधा विकृत-रूप में उच्छृङ्खलता-पूर्वक मनाया जाता है। अतः आवश्यकता है कि 'होलिका'-महोत्सव के महत्त्व को हम समझें और विहित अनुष्ठान द्वारा इससे लाभ उठाएँ।

अग्नि-जागरण की मूल-प्रेरणा और 'होलिका'

हिन्दू-धर्म की विविधताओं के कारण विभिन्न प्रदेशों में 'होलिका'-महोत्सव के स्वरूपों में भेद दिखाई देते हैं। कहीं 'होलिका'-महोत्सव को भगवान् श्रीकृष्ण-सम्बन्धी पर्व के रूप में मनाया जाता है और 'होली' को 'पूतना'-ज्वलन माना है। कहीं 'होलिका'-पर्व को श्रीप्रह्लाद की घटना से सम्बन्धित मानते हैं। कुछ लोग 'होलिका'-महोत्सव को महा-देव द्वारा कामदेव का जलन मानते हैं।

साधक 'होलिका' को 'महा-रात्रि' के रूप में देखते हैं और अनात्माकार वृत्तियों का लय करने का प्रयत्न करते हैं, जिससे आत्माकार-वृत्ति की स्थिति सु-दृढ़ होती है और 'कुण्डलिनी-शक्ति' का जागरण होता है। संक्षेप में सभी मतों में 'अग्नि-जागरण' की प्रधानता है।

'अग्नि-जागरण' की मूल-प्रेरणा हमें वेदों से मिली है। 'वेद' कहते हैं-'अग्निर्जागार तमृचः कामयन्ते, अग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति। अग्निर्जागार तमयं सोम आह, तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः।। (ऋग्वेद, ५/४४/१५) अर्थात् ''जिस राष्ट्र की व्यक्तिगत अग्नि अर्थात् उसकी 'उत्साह-शक्ति' और राष्ट्र-गत अग्नि अर्थात् उसकी 'तेज-शक्ति' जाग्रत् होती हैं, वही राष्ट्र सर्व-सौभाग्यों का अधिकारी होता है।''

शास्त्रों, पुराणों में 'होलिका'

कर्म-मीमांसा एवं पुराणों के अनुसार होलिका-महोत्सव का आरम्भिक नाम 'होलाका' था। महर्षि जैमिनि-कृत 'कर्म-मीमांसा-शास्त्र' में 'होलाकाधिकरण' नामक स्वतन्त्र कर्म-काण्ड का वर्णन है। वात्स्यायन ऋषि ने पारम्परिक उत्सवों-महोत्सवों में 'होलाका' को श्रेष्ठ महोत्सव माना है। हेमाद्रि ने 'होलाका'-पूर्णिमा को 'हुताशनी' कहा है। 'लिङ्ग-पुराण' में फाल्गुन पूर्णिमा को 'फाल्गुनिका' कहा गया है और इसे बाल-क्रीड़ाओं से पूर्ण एवं लोगों को ऐश्वर्य देनेवाली बताया है। 'वराह-पुराण' में इसे 'पटवास-विलासिनी' कहा गया है।

भविष्योत्तर-पुराण (१३२/१/५१) में इस उत्सव के सम्बन्ध में एक कथा दी गई है। महाराज युधिष्ठिर ने भगवान् कृष्ण से पूछा कि फाल्गुन-पूर्णिमा को प्रत्येक गाँव एवं नगर में उत्सव क्यों होता

है? प्रत्येक घर में बच्चे क्यों क्रीड़ा-मय हो जाते हैं और 'होलाका' जलाते हैं? 'होलाका' में किस देवता की पूजा होती है? किसने इस उत्सव का प्रचार किया? इसमें क्या-क्या कर्मानुष्ठान होते हैं?

भगवान् कृष्ण ने युधिष्ठिर से राजा रघु की एक कथा कही। राजा रघु के पास लोग यह कहने के लिए गए कि 'ढुण्ढा' नामक एक राक्षसी बच्चों को दिन-रात डराया करती है और बच्चे उसके उत्पीड़न से सूख जाते हैं। राजा द्वारा पूछने पर उनके पुरोहित ने बताया कि वह मालिन की पुत्री एक राक्षसी है। इसे भगवान् शिव ने वरदान दिया है कि उसे देव, मानव आदि मार नहीं सकते और न वह अस्त्र-शस्त्र या जाड़े, गर्मी या वर्षा से मर सकती है। केवल क्रीड़ा-युक्त बच्चों से वह भयभीत हो सकती है।

'होलिका' अर्थात् 'सर्व-दुष्टापह होम'

पुरोहित ने यह भी बताया कि 'फाल्गुन की पूर्णिमा' को शीत ऋतु समाप्त होती और ग्रीष्म ऋतु का आगमन होता है, तब लोग समुदायों में एकत्रित होकर हँसें एवं आनन्द मनाएँ। बच्चे लकड़ियों के टुकड़े, घास आदि एकत्रित करें तथा बड़े लोग रक्षोघ्न-मन्त्रों के उच्चारण-सहित उसमें आग लगाएँ। प्रज्वलित अग्नि-देव का सभी लोग तालियाँ बजाकर स्वागत करें, प्रदक्षिणा करें, हँसें और अपनी-अपनी भाषा में सर्वथा मुक्त होकर उच्च-स्वर से गायन, अट्टहास, क्रीड़ा करें। इस प्रकार के 'सर्व-दुष्टापह होम' से वह 'ढुण्ढा' राक्षसी भयभीत होकर मर जाएगी।

जब चक्रवर्ती राजा ने 'सर्व-दुष्टापह होम' का विधि-वत् अनुष्ठान किया, तो 'ढुण्ढा' राक्षसी मर गई और वह दिन 'होलाका'-ज्वलन के नाम से प्रसिद्ध हो गया। दूसरे दिन चैत्र की प्रतिपदा पर लोगों को होलिका-भस्म को प्रणाम करना चाहिए, मन्त्रोच्चारण करना चाहिए, घर के प्राङ्गण में वर्गाकार स्थल के मध्य में 'काम-पूजा' करनी चाहिए। इससे सम्पूर्ण समुदाय 'रोग'-मुक्त होकर आनन्द से रहेगा।

पुराणों में 'ढुण्ढा' राक्षसी के अन्य नाम भी मिलते हैं। यथा-'शीतोष्णा, असृक्या, सन्धिजा, अरुकूण्ठा, होलाका' आदि। इन नामों के अर्थों का विवेचन करने पर तथा पौराणिक कथानकों के मन्तव्यों पर ध्यान देने से 'ढुण्ढा' राक्षसी के तात्त्विक स्वरूप का बोध होता है। 'ढुण्ढा'-शब्द 'ठुण्ठ'-शब्द का अपभ्रंश है। जिस प्रकार कोई वृक्ष मधु-रसात्मक प्राण-रस से वञ्चित होकर शुष्क हो केवल 'ठुण्ठ' (ठूँठ) ही रह जाता है, ठीक उसी प्रकार 'ढुण्ढा' राक्षसी के प्रकोप से बालकों का शरीर अर्थात् 'मानव समाज की उत्साह-शक्ति' सूख कर केवल 'ठुण्ठ'-सी रह जाता है।

इस प्रकार मानव समाज की उत्साह-शक्ति को बचाने के लिए ही हमारे ऋषियों ने 'संवत्सर' की समाप्ति एवं 'नए संवत्सर' के स्वागत की बेला में 'रङ्ग'-वर्षण और 'राग-रागिनी'-मय उत्सव के रूप में 'सर्व-दुष्टापह अग्नि-प्रज्वलन' का विधान हमें दिया है। आवश्यकता है कि आज हम उक्त मन्तव्यों को पुनः समझें और पूर्णतया नीरोग बनते हुए विशेष उत्साह के साथ नवीन संवत्सराग्नि को धारण करें।

-'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल

होलिका-दाह : बुधवार, ७ मार्च २०१२ को भद्रा-पुच्छ में रात्रि १२:०८ से रात्रि ०१:२० तक।

संक्षिप्त नवरात्र-पूजन-विधि

'कुल-वाणी-रत्न' पं० सतीशकुमार उपाध्याय

पूजन-सामग्री–१. लाल रङ्ग की ध्वजा, २. मिट्टी या धातु का कलश, ३. कलश पर रखने हेतु आम्र-पल्लव, ४. कुशा, ५. जौ, ६. धूप, ७. गन्ध, ८. पुष्प-माला, ९. नारियल, १०. नारियल पर लपेटने का लाल वस्त्र, ११. ताम्बूल, १२. कपूर, १३. आसन, १४. चौकी या पीढ़ा, १५. चौकी पर बिछाने हेतु नया लाल वस्त्र, १६. रुई, १७. शुद्ध घृत या तेल, १८. माला, १९. पवित्र जल एवं २०. नैवेद्य-सामग्री। अन्य सामग्री साधक अपने सामर्थ्य के अनुसार एकत्र कर सकते हैं।

पूजन-विधि–(१) पूजा हेतु एक पवित्र, शान्त स्थान चुने। पूजा-स्थान में अपना 'आसन' बिछाए। 'आसन' पर पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुँह कर सुख-पूर्वक बैठे।

'ॐ ह्रीं हूँ फट्'–यह कहकर समस्त पूजन-सामग्री पर 'कुशा' द्वारा 'पञ्च-पात्र' का 'पवित्र जल' छिड़के तथा 'कुशा' द्वारा अपने ऊपर पवित्र जल छिड़कते हुए 'पवित्रीकरण मन्त्र' पढ़े–

'ॐ अपवित्रः पवित्रो वा, सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं, सः बाह्याभ्यन्तरः शुचिः।।'

(२) अपने सम्मुख स्थापित चौकी या पीढ़े पर रक्त सिन्दूर या रक्त चन्दन से एक 'त्रिकोण' बनाए और उसके ऊपर नवीन रक्त वस्त्र, कर-बद्ध हो–'ॐ ह्रीं आधार-शक्ति-कमलासनाय नमः' कहकर बिछा दे। बिछाए हुए नवीन वस्त्र पर माँ दुर्गा का चित्र या मूर्ति रक्खे।

(३) कुशा द्वारा 'पञ्च-पात्र' से 'पवित्र जल' लेकर निम्न मन्त्र पढ़ते हुए आचमन करे। यथा–ह्रीं आत्म-तत्त्वाय स्वाहा। ह्रीं विद्या-तत्त्वाय स्वाहा। ह्रीं शिव-तत्त्वाय स्वाहा। ह्रीं सर्व-तत्त्वाय स्वाहा।'

(४) दाहिने हाथ में अक्षत-पुष्प-पवित्र जल लेकर 'सङ्कल्प' करे–'श्रीमहा-काली-महा-लक्ष्मी-महा-सरस्वती-प्रीत्यर्थे सकल-मनोरथ-फल-प्राप्त्यर्थं चतुर्विध-पुरुषार्थ-सिद्ध्यर्थं सङ्कल्पमऽहं करिष्ये।'

(५) 'सङ्कल्प' करने के बाद, सम्मुख स्थापित चौकी के निकट तथा अपनी दाहिनी ओर शुद्ध घृत या तेल का एक 'दीपक' स्थापित करे। 'दीपक' की बत्ती को दियासलाई द्वारा प्रज्वलित करे और दाहिने हाथ में पुष्प-पवित्र जल-अक्षत लेकर कहे–

'भो दीप! ब्रह्म-रूपस्त्वं, ह्यन्धकार-विनाशकः।
गृहाण मत् - कृतां पूजां, ओजस्तेजः प्रवर्धय।।'

(६) 'दीप-प्रज्वलन' के बाद, माँ दुर्गा के चित्र या मूर्ति के पास रक्त चन्दन से एक 'स्वस्तिक' बनाए। 'स्वस्तिक'-प्रतीक में भगवान् गणेश का 'ध्यान' कर उनका 'आवाहन-पूजन' करे। पहले 'ध्यान' करे–

ॐ विघ्नेश्वराय वरदाय सुर-प्रियाय, नागाननाय श्रुति-यज्ञ-विभूषिताय।
लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय, गौरी-सुताय गणनाथ नमो नमस्ते।।

फिर 'आवाहन' करे–'ॐ गणानां त्वा गणपति ँ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपति ँ हवामहे। निधीनां त्वा निधिपति ँ हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्।'

ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीगणपते! इहागच्छ, इह तिष्ठ, सुप्रतिष्ठो भव, मम पूजां गृहाण।

तब 'स्वस्तिक' के प्रति मन्त्र पढ़ते हुए 'पूजन-सामग्री' चढ़ाए। यथा-

ॐ गणपतये नमः पादयोः पाद्यं समर्पयामि। ॐ गणपतये नमः शिरसि अर्घ्यं समर्पयामि। ॐ गणपतये नमः गन्धाक्षतं समर्पयामि। ॐ गणपतये नमः पुष्पं समर्पयामि। ॐ गणपतये नमः धूपं घ्रापयामि। ॐ गणपतये नमः दीपं दर्शयामि। ॐ गणपतये नमः नैवद्यं समर्पयामि। ॐ गणपतये नमः ताम्बूलं समर्पयामि। ॐ गणपतये नमः दक्षिणां समर्पयामि।

अन्त में हाथ जोड़कर 'प्रार्थना' करे-

'वक्र-तुण्ड महा-काय, सूर्य-कोटि-सम-प्रभ!।
निर्विघ्नं कुरु मे देव!, सर्व-कार्येषु सर्वदा।।'

(७) भगवान् गणेश की पूजा करने के बाद लाल ध्वज या पताका अपने घर के शीर्ष स्थान पर लगाए।

गुग्गुल-धूप देने के बाद भगवती को 'कर्पूर-युक्त 'घृत-दीप' अर्पित करे-

रक्त-सूत्र-लसद्-वर्त्रीं, गो-घृतेन च पूरितम्।
दीपं गृहाण देवेशि!, नमस्त्रैलोक्य सुन्दरि!।।

(८) इसके बाद पूजा-स्थान में चौकी के निकट अपनी बाँईं ओर रक्त चन्दन से बिन्दु-सहित एक अधो-मुख त्रिकोण बनाए और उसके ऊपर नवीन 'कलश' रक्खे। 'कलश' में पुष्प, कपूर, लौंग आदि द्रव्य डाले फिर-

ॐ गङ्गे च यमुने चैव, गोदावरि सरस्वति!।
नर्मदे सिन्धु कोवेरि!, जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।।

उक्त मन्त्र पढ़कर 'कलश' के शुद्ध जल में सूर्य-मण्डल से अंकुश-मुद्रा द्वारा तीर्थ-शक्तियों का आवाहन करे। आम्र-पल्लव डालकर कलश के मुख पर जौ-चावल से भरा हुआ दीपक-जैसा पात्र रक्खे। पात्र पर आम्र-पल्लव का गुच्छा रखकर उसके ऊपर घृत या तैल का दीपक स्थापित करे। कलश के सम्मुख किसी आधार पर रक्त वस्त्र में लपेटा हुआ नारियल रक्खे।

(९) माँ दुर्गा की प्रतिमा या चित्र को एक-टक देखते हुए अथवा हृदय में उनके स्वरूप का ध्यान करते हुए दाएँ हाथ में पुष्प लेकर भगवती का 'आवाहन' करे-

एहि दुर्गे, महा-भागे!, रक्षार्थं मम सर्वदा।
आवाहयाम्यहं देवि!, सर्व-कामार्थ-सिद्धये।।

यह कहकर पुष्प प्रतिमा या चित्र के सम्मुख रख दे और दोनों हाथ जोड़कर कहे-

ॐ जयन्ती मङ्गला काली, भद्र-काली कपालिनी।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री, स्वधा स्वाहा नमोऽस्तु ते।।

इसके बाद अपनी दाईं ओर रखे 'पञ्च-पात्र' के अभिमन्त्रित जल को आचमनी में लेकर सामने किसी रखे पात्र में छोड़ते हुए भगवती को निम्न मन्त्र से स्नान कराए-

ज्ञान मूर्ति भद्र-काली, प्रिय-मूर्ति सुरेश्वरी।
स्नानं गृहाण देवेशि!, तीर्थोदक-विभूषितम्।।

स्नान के बाद निम्न मन्त्र पढ़कर भगवती को कर्पूर-गन्ध-रोचना आदि अर्पित करे-

श्रीखण्डागरु - कर्पूरं, रोचनाभि - संयुतम्।
गन्धं गृहाण देवेशि!, सर्व-काम-फल-प्रदम्।।

फिर रक्त-पीतादि सुगन्धित पुष्प, माला आदि अर्पित करे-

नाना-पुष्प-विचित्राढ्यां, पुष्प-मालां सु-संस्कृताम्।
प्रयच्छामि महा-देवि!, गृहाण त्वं सुरेश्वरि!।।

तब चित्र के सम्मुख गुग्गुल-धूप अर्पित करे-

गुग्गुलं घृत-संयुक्तं, अगर्वादि-समायुतम्।
दशाङ्गं गृह्यतां देवि!, भद्र-कालि! नमोऽस्तु ते।।

अन्त में भगवती को नैवेद्य एवं ताम्बूल अर्पित करे-

दिव्यान्न-रस-सम्पुष्टं, नाना-भक्ष्यैस्तु संस्कृतम्।
चोष्य-पेय-समायुक्तं, अन्नं देवि! गृहाण मे।।
गृहाण देवि! ताम्बूलं, कर्पूरेण सु-वासितम्।
पूगी-फल-समायुक्तं, सचूर-मुख-मण्डनम्।।

(१०) पूजन के बाद चित्र के सम्मुख पुष्प-सहित कर-बद्ध होकर प्रार्थना करे-

दुर्गे देवि! नमस्तुभ्यं, सकलासुर-नाशिनि!।
पुष्पाञ्जलिं गृहाण त्वं, मया दत्तां सुरार्चिते!।।

(११) पुनः कर-बद्ध होकर 'प्रार्थना' कर 'विसर्जन' करे-

सर्व-मङ्गल-माङ्गल्ये!, शिवे! सर्वार्थ-साधिके!।
शरण्ये! त्र्यम्बके! गौरि!, नारायणि! नमोऽस्तु ते।।

'कलि-काता' (कोलकाता) तथा पटना में
श्रीकुल-भूषण-स्मरण एवं पूजनादि

श्रीजगदम्बा की अनुकम्पा से हमें २१ जनवरी से २५ जनवरी, २०१२ **'कलि-काता'** अर्थात् **कोलकाता** तथा **पटना** जाने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इस अवसर पर **'कलि-काता'** में **'कौल-सुधाकर' श्री विजय वत्स** जी तथा पटना से पधारे **'कुल-वाणी-रत्न' श्री अरुणकुमार पाण्डेय** जी के सहयोग से न केवल **काली घाट, दक्षिणेश्वर** के दर्शन हुए अपितु **'मूल-चक्रार्चन'** भी विधि-वत् सम्पन्न हुआ। **'चण्डी'** पुस्तक-माला के प्रेमी-बन्धु **श्री अशोक झा** जी के सहयोग से हम लोग **'सारस्वत मठ'**, पो० पानिहारी भी गए। **श्री नवरतन** जी **ढँढारिया** एवं **विजय काजडिया** जी से **शक्ति-उपासना** सम्बन्धी विशेष चर्चाएँ उनके निवास-स्थान पर हुईं। **'कलि-काता'** से हम एक दिन के लिए २५ जनवरी, २०१२ को **पटना** गए। पटना में **'विद्या-निकेतन'** विद्यालय में **श्रीकुल-भूषण** जी का भाव-पूर्ण स्मरण करने के बाद हम लोग **प्रातः-स्मरणीया माई जी** के **श्यामा मन्दिर** में गए और वहाँ हमने **'पाठ'** किया। रात्रि में गाड़ी पकड़ने से पूर्व **श्री ओमप्रकाश** जी के आवास पर भाव-पूर्ण **अर्चन** भी हुआ। **पटना** में **'पाठ'** तथा **'पूजन'** में सभी बन्धुओं को आनन्द की अनुभूति हुई।— ऋतशील शर्मा

पर्व-पत्र

वासन्तिक नवरात्र, 'विश्वावसु' सं० २०६९ वि० :: २३ मार्च, २०१२

- **चैत्र शुक्ला प्रतिपदा, शुक्रवार (२३ मार्च, १२) : वासन्तिक नवरात्र प्रारम्भ। कलश-स्थापना प्रातः-काल (ब्रह्म-योग, रात्रि १.३९ तक)। 'चण्डी'-पाठ** प्रारम्भ। सप्त-दिवसीय पाठ-कर्त्ता **'सप्तशती' के अध्याय १ का पाठ करें। शैल-पुत्री देवी का ध्यान-पूजन-मनन।**
- **चैत्र शुक्ला द्वितीया, शनिवार (२४ मार्च, १२) : 'चण्डी'-पाठ।** सप्त-दिवसीय **पाठ में अध्याय २-३ का पाठ करें। ब्रह्म-चारिणी देवी का ध्यान-पूजन-मनन।**
- **चैत्र शुक्ला तृतीया, रविवार (२५ मार्च, १२) : 'चण्डी'-पाठ।** सप्त-दिवसीय **पाठ में अध्याय ४ का पाठ करें।** सौभाग्य-सुन्दरी-व्रत। **चन्द्र-घण्टा देवी का ध्यान-पूजन-मनन।**
- **चैत्र शुक्ला चतुर्थी,** सोमवार (२६ मार्च, **१२) : 'चण्डी'-पाठ।** सप्त-दिवसीय **पाठ में अध्याय ५-६-७-८ का पाठ करें। श्री विनायक गणेश-चतुर्थी। कूष्माण्डा देवी का ध्यान-पूजन-मनन।**
- **चैत्र शुक्ला पञ्चमी,** मङ्गलवार (२७ मार्च, १२) : **'चण्डी'-पाठ।** सप्त-दिवसीय पाठ में **अध्याय ९-१०। श्री** लक्ष्मी-पूजा। **स्कन्द-माता देवी का ध्यान-पूजन-मनन।**
- **चैत्र शुक्ला षष्ठी, बुधवार (२८ मार्च, १२) : 'चण्डी'-पाठ।** सप्त-दिवसीय पाठ में **अध्याय ११ का पाठ करें। श्री** सूर्य-षष्ठी-व्रत। **श्री कात्यायनी देवी का ध्यान-पूजन-मनन। श्रीयमुना-जयन्ती।**
- **चैत्र शुक्ला षष्ठी-सप्तमी, गुरुवार (२९ मार्च, १२) : 'चण्डी'-पाठ।** सप्त-दिवसीय पाठ में **अध्याय १२-१३ का पाठ करें। काल-रात्रि देवी का ध्यान-पूजन-मनन।**
- **चैत्र शुक्ला सप्तमी-अष्टमी, शुक्रवार (३० मार्च, १२ : 'चण्डी'-पाठ।** सप्तमी दिन ७:३१ तक, उसके बाद **अष्टमी।** रात्रि में सप्तमी-विद्धा अष्टमी में महा-निशा-पूजन। **गौरी देवी का ध्यान-पूजन-मनन।**
- **चैत्र शुक्ला अष्टमी-नवमी, शनिवार (३१ मार्च, १२) : अष्टमी दिन ८:२७ तक।** उदया **दुर्गा-अष्टमी-व्रत। सिद्धि-दात्री देवी का ध्यान-पूजन-मनन।**
- **चैत्र शुक्ला नवमी-दशमी, रविवार (०१ अप्रैल, १२) : नवमी दिन ८:४७ तक। मध्याह्न-व्यापिनी श्रीराम-नवमी। नवमी का हवन। दशमी में नवरात्र-व्रत-पारण।**
- **चैत्र शुक्ला एकादशी, मङ्गलवार (०३ अप्रैल, १२) : कामदा एकादशी-व्रत। श्री लक्ष्मी-नारायण-पूजा।**
- **चैत्र शुक्ला चतुर्दशी, गुरुवार (०५ अप्रैल, १२) : श्रीशिव-नृसिंह-पूजा।**
- **चैत्र शुक्ला पूर्णिमा, शुक्रवार (०६ अप्रैल, १२) : स्नान-दान की पूर्णिमा।**

सूचना : 'चण्डी' पुस्तक-माला वर्ष ७०, पुस्तक १० श्री देवी-सूक्त, पुस्तक ११ (कुल-साधना, पुष्प-५) के साथ मार्च, २०१२ में भेजी जाएगी।

की कृपा चाहेंगे, तो यह व्यर्थ है। हमारी **आर्त्ति की यथार्थता** वही समझती है। अतएव यदि हमारे कल्पित दुःखों को वह न हरे, तो हमको इस पर अपनी **करुणा-मयी माता के करुणा-मयत्व** पर आक्षेप नहीं करना चाहिए।

'परायणा' पद का साधारण अर्थ है, **'पटु-परञ्च'**। इस पद के इस प्रकार विच्छेद—**'परं अयनं उद्देश्यं यस्याः'** से ऐसा तात्पर्य है कि इसका मुख्य उद्देश्य **'परित्राण'** ही है।

'सर्वस्य' पद से भक्तातिरिक्त जनों का तात्पर्य है। इसी से कहा गया है—**'वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयोत्थम्।'** अर्थात् जो **'शरण'** में नहीं भी आया है या आता है, उसकी भी **'परमार्ति'** हरनेवाली है। इसके उदाहरण **'महिषासुर'** आदि अनेक हैं।

हंस-युक्त-विमानस्थे, ब्रह्माणी-रूप-धारिणि!।
कौशाम्भः-क्षरिके देवि!, नारायणि! नमोऽस्तु ते।।११।।

टीका—हे हंसों के विमान पर बैठनेवाली **'ब्राह्मी-स्वरूपा'**, **'कुशाओं'** से **'जल'** छिड़कनेवाली, **'शक्ति'**-रूपिणी **नारायणि!** तुमको प्रणाम हो।

व्याख्या—अब भगवती का **'ब्रह्माणी'** आदि **'सप्त-शक्ति-स्वरूपिणी'** होना अर्थात् **'धर्मी'** और **'धर्म-शक्ति'** के अभेदत्व का प्रतिपादन है। **ब्रह्माणी** आदि इसी **'महा-चिति'** की विभूतियाँ हैं, जैसा इसने स्वयं कहा है—**'अहं विभूत्या बहुभिरिह रूपैर्यदा स्थिता'**। ये इसी एक **'महा-चिति'** अग्नि-रूपिणी की भिन्नाभिन्न विविध **'स्फुलिङ्ग'** चिनगारियाँ हैं। ये हम **'व्यष्टि'** में भी हैं। अतः इनका ज्ञान हमको आवश्यक है, ताकि हम भी इनकी उपयोगिता सीखकर **'व्यष्टि'**-स्थित या **'स्व-स्थित'** शुम्भादि **'आसुरी' सर्गों का विनाश** करने में समर्थ हों।

यहाँ यह लिखना अयुक्त नहीं होगा कि **'देवी-माहात्म्य'** पढ़ लेने मात्र से उद्देश्य की पूर्ण सिद्धि नहीं होती। मुख्य तात्पर्य है, इस **'माहात्म्य'** के मनन से और **'निदिध्यास'** से अर्थात् जैसा **'समष्टि'** में हुई भी, हो रही है और होगी, वैसी ही हम भी अपने में **'महा-चिति'** को चैतन्य कर शुम्भादि **'असुरों'** से अपनी रक्षा करें।

अस्तु, **'ब्रह्माणी'** से **शुद्ध 'मानसिक शक्ति'** का बोध होता है। इस **'शक्ति'** का वाहन अर्थात् जवीयता का साधन **'हंस'** है। **'हंस'** से **'प्राण'**-वायु का बोध होता है और इसका आयुध है **'कुशा'**, जिससे जल छिड़कती है। संक्षेप में **'कुश'**—**'कु कुत्सित** (बुरा)-**शो हनने-अच्'** का अर्थ है बुरे (भाव) को दूर करनेवाला यन्त्र, जो **'आत्म-शुष्कता'** को दूर कर, **'जल-सिञ्चन'** कर आर्द्र करता है, जिससे **'ब्रह्म-बीज'** बोया जा सके।

त्रिशूल - चन्द्राहि - धरे, महा-वृषभ - वाहिनि!।
माहेश्वरी-स्वरूपेण, नारायणि! नमोऽस्तु ते।।१२।।

टीका–हे त्रिशूलं, चन्द्र और नाग-धारिणी, श्रेष्ठ बैल की सवारी करनेवाली, माहेश्वरी-स्वरूपा नारायणि ! तुमको नमस्कार हो।

व्याख्या–'त्रिशूल' वह आयुध है, जिससे त्रि-शूल या **'त्रि-ताप'** (१. **भौतिक**, २. **दैविक** और ३. **आध्यात्मिक** दुःख-त्रंय) का नाश किया जाता है। इसकी **'योग-वाशिष्ठी'** परिभाषा है– **'त्रिशूलं तेन त्रैलोक्यं, गृहीतं कर-कोटरे। यस्मात् तद्-व्यतिरेकेण, सर्व-भूत-गणेष्वपि। अन्यत्र विद्यते किञ्चिद्, देहात्मैव ततः स्थितः। सर्व-सत्त्वोपलम्भात्मा, स्वभावोऽस्य प्रयोजनम्।**

ईरितः शिव-रूपेण, चिन्मात्राकाश-रूपिणा॥' (निर्वाण प्र० उ० ८०, सर्ग)।

'चन्द्र' से **'चदि प्रकाशे–रक् उणादि'** का अर्थ है, **'प्रकाश'** करनेवाला पदार्थ। इसका रहस्यार्थ है **'ज्ञान'**। रहस्य-भाव में **'चन्द्र'** का ही विशेषण **'त्रि-शूल'** है। **'चन्द्र'** अर्थात् **'ज्ञान'**, जो **'त्रि-ताप-नाशक'** है।

अब इस **'ज्ञान'** का **'रूप'** या आकार कैसा है, तो **'सर्प'**-वत् कुण्डलाकार अर्थात् **'गोल'**। इससे **'समष्टि'**-भाव में **'कुण्डली'**-महा-शक्ति का और **'व्यष्टि-भाव'** में **'प्राण-शक्ति सार्ध-त्रिवलयाकारा'** का बोध होता है। यह **'कुण्डली'** महा-शक्ति विश्व-व्यापिनी है, जो अपनी इच्छा से **'गुणिका'** होकर रहती है। यह **'त्रिगुणा'** से लेकर **'इक्यावन'** (५१) गुणा तक है। सभी इक्यावनों **'मातृकाओं'** की उत्पत्ति है–**'पञ्चाशच्चन्द्र-गुणिता,, मातृकोत्पत्ति-सुन्दरी'** (शक्ति-सङ्गम-तन्त्र)।

'महा-वृषभ' से **'श्रेष्ठ धर्म'** का बोध होता है–**'वर्षति कामान् इति वृषः धर्म। वृष वर्षणे-अभन् उणादि।'** इससे **'महा-धर्म-शीला'** का भी बोध होता है। **'वाहिनी'** के बहु धातु का एक अर्थ **'प्रापण'** (प्राप्त्यर्थ) में भी प्रयोग है। इस प्रकार **'महा-धर्म'** से ही ज्ञात होनेवाली का बोध होता है।

पूर्वोक्त लक्षणाओं से मण्डिता **'माहेश्वरी'** या रौद्री अर्थात् क्रिया-शक्ति-स्वरूप में माता **'नारायणी'** अर्थात् परमात्म-शक्ति को प्रणाम।

मयूर-कुक्कुट-वृते, महा-शक्ति-धरेऽनघे!।
कौमारी-रूप-संस्थाने, नारायणि! नमोऽस्तु ते ।।१३।।

टीका–हे 'मयूर' और 'कुक्कुट' से घिरी, महा-शक्ति रखनेवाली, निष्पापा, 'कौमारी'-स्वरूपिणी नारायणि ! तुमको प्रणाम हो।

व्याख्या–'मयूर' से **'मि दूरी-करणे–ऊरन् उणादि'** शत्रुओं को खदेड़नेवाली शक्ति का बोध होता है। फिर **'कुक्कुट'** से **'कुक् कोकनम्, कुक् आदाने, कुटतीति कुटः, कुट कौटिल्ये'** एकाधिक तात्पर्यों का बोध होता है। इससे **'काट'** कर लेनेवाला, **'खरोंच'** कर लेनेवाला और **'कुत्सित'** वस्तु को काटनेवाला आदि का बोध होता है। रौद्रिक रूप में, अग्नि **'स्फुलिङ्ग'**

(चिनगारी) भी अर्थ है। अस्तु, इससे '**अविद्या**'-रूप शत्रुओं को दूर करनेवाली शक्तियों अर्थात् '**विद्या**'-रूपी प्रकाश-रेखा से जो आवृता है, ऐसा बोध होता है। इसी से **शक्ति-सेना-समन्विता** कहते हैं।

'**महा-शक्ति-धरा**' से शब्दार्थ-तया ऐसा बोध होता है कि '**शक्ति**' नाम के एक श्रेष्ठ '**आयुध**' को हाथ में रखनेवाली है। इसका तात्पर्य, बड़ी-बड़ी '**धर्म-शक्तियाँ**' रखनेवाली '**धर्मी-शक्ति**' अथवा **महा-धर्मी शक्ति** (शक्ति-धरा) से है।

'**अनघा**' का वाच्यार्थ है, '**पाप-रहिता**'। इससे इसके '**निर्लेपत्व**' और '**निर्मलत्व**' आदि लक्षणों का बोध होता है। मल ही '**अघ**' अर्थात् पाप है। इसका मूल '**भेद-ज्ञान**' है। इस प्रकार इससे '**समता**' का भी बोध होता है। इस भाव के मनन से हमारी '**द्वैत-प्रतीति**' दूर होती है।

पूर्वोक्त लक्षणाओं से व्यञ्जित '**कौमारी**' अर्थात् **कुमारी** अर्थात् '**कु**' अर्थात् '**द्वैत-भाव**'-मूलक बुराइयों को '**मारी**' अर्थात् दूर करनेवाली **महा-विद्या-रूपिणी नारायणी महा-शक्ति** या '**आदि-शक्ति**' को प्रणाम हो अर्थात् हमारा '**ऐक्य-भाव**' हो।

शङ्ख - चक्र-गदा - शार्ङ्ग -गृहीत-परमायुधे!।
प्रसीद वैष्णवी-रूपे!, नारायणि! नमोऽस्तु ते।।१४।।

टीका—हे **शङ्ख**, **चक्र**, **गदा** और **शार्ङ्ग** अर्थात् धनुष—इन '**चार**' श्रेष्ठ '**आयुधों**' को धरनेवाली '**वैष्णवी**'-रूपिणी प्रसन्न हो। हे **नारायणि**! तुमको प्रणाम हो।

व्याख्या—यहाँ '**शङ्ख**' की संज्ञा है '**पाञ्चजन्य।**' इसका उल्लेख हमको '**गीता**' में भी मिलता है। यह आध्यात्मिक या दार्शनिक दृष्टि से '**पञ्चापञ्च-कारक आयुध**' है अर्थात् '**पञ्च-भूत-भाव-लयात्मक**' आयुध है, जैसा इशारे से '**श्रुति**' कहती है—'**पञ्च-भूतात्मकं शङ्खं, करे रजसि संस्थितम्।**' इसी भाव का द्योतक '**काली**' महा-विद्या हस्त-स्थित '**छिन्न मुण्ड**' और '**तारा**' महा-विद्या हस्त-स्थित '**कपाल**' है।

'**चक्र**' का नाम '**सुदर्शन**' है। इसका रहस्यार्थ है—अति चञ्चल या सर्वदा धावमान '**मन**'—'**बाल-स्वरूपमित्यन्त मनश्चक्रं निगद्यते**'—श्रुति। इस '**आयुध**' से दोनों क्रियाएँ होती हैं—**१. अविद्या-जाल** काटा जाता है और **२. मन की चञ्चलता** द्वारा जगत् की स्थिति भी '**स्थिर**' रखी जाती है।

'**गदा**' की संज्ञा '**कौमाद**' भी है। इससे '**आद्या**' विद्या का बोध होता है— '**आद्या विद्या गदा वेद्या**'—श्रुति।

'**शार्ङ्ग**' अर्थात् **धनुष** से उस आयुध का तात्पर्य है, जिससे '**ज्ञानी**' जीव-द्वारा **लक्ष्य-वेध** कराया जाता है अर्थात् '**ब्रह्म-ज्ञान**' की जिससे प्राप्ति होती है। ऐसा उपदेश '**श्रुति**' इन शब्दों में देती है—

'धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महाऽस्त्रं, शरं ह्युपासानिशित सन्दधीत।
आयम्य तद् भाव-गतेन चेतसा, लक्ष्यं तु तदेवाक्षरं सौम्य! विद्धि।'—मुण्डक २।२।३

अर्थात् 'धनुष' लेकर 'उपासना' से भँजे, उपनिषत्-रूपी श्रेष्ठ 'शर' चढ़ा तद्-गत भाव से 'अक्षर' अर्थात् 'ब्रह्म'-रूपी 'लक्ष्य' का वेध करो।

उक्त चारों 'वैष्णवी' अर्थात् 'ज्ञान-शक्ति' के आयुध हैं। इनसे 'स्थिति-क्रिया' और 'लय-क्रिया' दोनों ही होती हैं। बहिर्मुखी प्रयोग से 'स्थिति-क्रिया' और अन्तर्मुखी प्रयोग से 'लय-क्रिया' होती है।

ऐसी 'वैष्णवी' अर्थात् 'विश्व-व्यापिनी शक्ति' के प्रसन्न होने पर ही अर्थात् इसी की 'कृपा' से 'कल्याण' है। इस हेतु 'प्रसीद' पद के प्रयोग के पश्चात् 'नमस्क्रिया' है। तात्पर्य कि गीतोक्त 'बुद्धि-योग' देनेवाली 'नारायणी' या 'परमात्म-महा-शक्ति' का यही ज्ञान या 'विज्ञान' शक्ति-रूप है।

गृहीतोग्र - महा-चक्रे, दंष्ट्रोद्धृत - वसुन्धरे!।
वराह-रूपिणि शिवे!, नारायणि! नमोऽस्तु ते।।१५।।

टीका—हे महा-उग्र चक्र की धारण करनेवाली, 'पृथ्वी' को दाँतों से उद्धृत करनेवाली, 'वाराह'-रूपी मोक्ष-दायिनी 'नारायणि'! तुमको प्रणाम हो।

व्याख्या—इस पद्य में कल्याण करनेवाली नारायणी के 'वाराही'-रूप का प्रतिपादन है। 'वराह' से 'वर—आङ—हन्—ड' का तो अर्थ है, 'वर' का त्याग व हनन करनेवाला, परन्तु 'वाराही' शक्ति 'बाला' (त्रिपुरा-बाला) की 'मन्त्रिणी' हैं।

'बाला' की शक्ति-सूत्रोक्त परिभाषा है—'बल-लाभे विश्वमात्म-सात् करोति'। यह 'वाराही'—बाला स्वात्म देवता की 'मन्त्रिणी' या तोष-कारिणी है। यह अन्तर 'वृत्ति-विशेषों' को अर्थात् 'वादों' को क्षय करती है, जिससे 'स्वात्म-देवता' बाला की तुष्टि होती है।

इस प्रकार 'वराह' की पूर्वोक्त व्युत्पत्ति भी सार्थक है। यह उस 'शक्ति' का नाम है, जिससे 'उत्तोलन-क्रिया' या कुण्डली (व्यष्टि आत्म-शक्ति) की आरोहण-क्रिया सम्पादित होती है। इसी 'क्रिया' का द्योतक है 'वसुन्धरा' की इस शक्ति के दाँतों द्वारा 'ऊर्ध्व' उत्तोलन-क्रिया।

इस शक्ति अर्थात् 'वाराही'-शक्ति के हाथ में महा-उग्र 'चक्र' हैं। यहाँ स्मरण रखना उचित है कि 'चक्र' एक नहीं, अनेक हैं। एक 'श्रुति' के अनुसार सात हैं—१. आ-चक्र, २. वि-चक्र, ३. सु-चक्र, ४. धी-चक्र, ५ सच्चक्र, ६. ज्वाला-चक्र और ७. महा-चक्र (सुदर्शन-चक्र)। यहाँ उग्र 'महा-चक्र' से 'ज्वाला-चक्र' का बोध होता है। तात्पर्य है कि यह 'ऊर्ध्व' ले जानेवाली शक्ति 'ज्वालास्त्र-शालिनी' है।

'**परमा-शक्ति**' या '**नारायणी**' का प्रणाम इस रूप में भी पूर्व आवश्यक है। ऐसा पूर्वोक्त पद्यों के निष्कर्ष-वत् इस पद्य या सभी पद्यों से तात्पर्य है।

नृसिंह - रूपेणोग्रेण, हन्तुं दैत्यान् कृतोद्यमे!।
त्रैलोक्य-त्राण-सहिते, नारायणि! नमोऽस्तु ते ।।१६।।

टीका—हे **नृसिंह**-रूप से राक्षसों को मारने को उद्यत होनेवाली, तीनों लोकों के उद्धार और हित अर्थात् '**उपकार-संयुक्त-शीला**', **नारायणि**! तुमको प्रणाम हो।

व्याख्या—इस पद्य में स्पष्ट रूप से '**महा-चिति**' के '**उग्र**' रूप का प्रतिपादन है। '**उग्र**' उसी को कहते हैं, जो शीघ्र ही स्पष्ट रूप से प्रत्यक्ष देखने में आए। '**नारसिंही**'-रूप '**उग्र**' है क्योंकि यह रूप अति शीघ्र **दैत्य हिरण्यकश्यपु** को मारने और **प्रह्लाद** की भलाई (हित) के लिए '**जड़**' वस्तु से '**स्थिति-रूप**' में प्रादुर्भूत हुआ था। '**उग्र**' रूप की '**उपासना**' सरल नहीं है। इसमें जैसी शीघ्र '**इष्टापत्ति**' की सम्भावना रहती है, वैसी ही '**अनिष्टापत्ति**' की भी सम्भावना रहती है।

'**चण्डी**'-रूप की '**उपासना**' तान्त्रिक **काली**, **उग्र-तारा**, **कराली (छिन्न-मस्ता)** आदि के सदृश ही '**उग्र**' है। '**चण्डी**' अर्थात् क्रुद्धा '**चडि कोपे**' स्वभावतः '**उग्र**' रूप है। इसकी उपासना यथार्थ वीर—'**प्रह्लाद**' के सदृश प्रबल सत्य ज्ञान-प्रभाव-शाली व्यक्ति ही कर सकते हैं और यथेष्ट फल-प्राप्ति कर सकते हैं। तभी तो '**प्रह्लाद**' जड़ स्फटिक-स्तम्भ का भेदन करा कर '**चैतन्य-मय**' स्वरूप को उद्भासित करा सके।

हम '**शाक्त**' साधकों को इसी पथ का अनुसरण कर अपने '**जड़त्व**' का नाश '**नारसिंही**' शक्ति द्वारा, जो हम '**व्यष्टियों**' में भी है, करना चाहिए।

किरीटिनि महा - वज्रे!, सहस्त्र - नयनोज्ज्वले!।
वृत्र-प्राण-हरे चैन्द्रि!, नारायणि! नमोऽस्तु ते।।१७।।

टीका—हे **मुकुट-धारिणि**, **महा-वज्र-धारिणि**, सहस्त्र नेत्रों से '**प्रकाश-मती**' या प्रकाश करनेवाली, '**वृत्र**' नाम के असुर को मारनेवाली, '**ऐन्द्री**' अर्थात् '**इन्द्र-शक्ति**'-रूपिणी '**नारायणी**' को प्रणाम हो।

व्याख्या—'**किरीट**' पद का रौढ़िक अर्थ है '**मुकुट**', परन्तु इसका '**लक्ष्यार्थ**' है—ज्योति या '**ज्ञान-ज्योति**' बिखेरनेवाला पदार्थ : '**कृ—कीटन उणादि**'। देव—'**दिव् प्रकाशे**' स्वरूपों का शिरोभूषण अर्थात् चरम धर्म या गुण '**ज्योति**' ही है।

'**वज्र**' पद से साधारणतया '**कठोर**' पदार्थ का बोध होता है, परन्तु इसका '**रहस्यार्थ**' है—महा-भय-दायक '**आयुध**' या '**शक्ति**'। तात्पर्य कि जिस '**शक्ति**' के भय से विश्व की शृङ्खला अक्षुण्ण रहे, वही '**वज्र**' है।

'**श्रुति**' भी कहती है—'**महद्-भयं वज्रमुद्यतम्**'। इस महा-भयावह '**वज्र-शक्ति**' से क्या होता है ? यह '**विद्युत्-शक्ति**' है, जिससे समस्त '**विश्व**' प्राण-शील है और जिसकी '**शक्ति**' से '**तम**' का नाश हो जाता है—'**अथ कस्मादुच्यते वैद्युतं ? यस्मादुच्चार्यमाण एव व्यक्ते महसि द्योतयति—'अथर्व-शिर**'।

इसी '**विद्युद्-ब्रह्म**' की **महद् भय-रूपिणी धर्म-शक्ति** '**वज्र**' के भय से, जैसा पूर्व उल्लिखित है, आदि क्या '**पञ्च-तत्त्व**' भी अपने-अपने निर्दिष्ट कर्त्तव्यों का पालन क्रमानुसार करते हैं।

अथवा '**वज्र—वज्-गमने—रक्**' से '**स्पन्दन-शीलात्मक**' पदार्थ का बोध होता है। इस भाव में भगवती '**महा-स्पन्द-शीलात्मिका**' हैं, ऐसा बोध होता है।

'**सहस्त्र**'-नाम '**बहु-संख्य**' या '**असंख्य**' का है। यह विश्वतश्चक्षु है, जिससे यह अपने '**दृष्टि-पात**' से प्रत्येक क्षुद्र-तम '**परमाणु**' तक को उज्ज्वल करनेवाली या '**उद्भासित**' करनेवाली है। इससे इसके '**सर्व-गोचरत्व**' का भी बोध होता है। यदि हमको इस लक्षणा पर विश्वास हो, तो इसको सर्वत्र उपस्थित जानकर कोई भी **असत् आचरण** न करें। यदि हम इस मन्त्र से **भगवती नारायणी** को नमस्कार करते हों, तो इस वाक्य को चरितार्थ करना हमारा पावन कर्त्तव्य है और अपने को इसी परं-ज्योति के नमन '**णी-सञ्चालने-ल्युट्**' अर्थात् दर्शक तात्पर्य कि '**अन्तरात्म-शक्ति**' से ही सञ्चालित होकर गन्तव्य पथ में अग्रसर हों। अथवा अपने को इसी की '**ज्योति-किरणों**' से उद्भासित समझें। तात्पर्य कि अपने में इस '**पर-ज्योति**' के आलोक को देखें। इसी अवस्था में इस '**वज्र**' की हमारी आवृत्ति (पाठ) सफल या यथार्थ होगी, अन्यथा नहीं।

'**वृत्र के प्राण को हरनेवाली**' पद से अन्तस्तात्पर्य है **अयथार्थ ज्ञान-रूपी आवरण** अर्थात् '**अनात्माकार-वृत्ति**' की नाश-कर्त्री विद्या। '**चित्त-वृत्ति**' का ही नाम '**वृत्र**' है। जब तक इसका नाश अर्थात् '**मनो-लय**' या '**वासना-क्षय**' नहीं होता, '**आत्म-ज्ञान**' नहीं होता। इसी का उपदेश **ब्रह्मर्षि वशिष्ठ** ने राम को दिया है—

'**स्वस्थस्तिष्ठ निराशङ्कं, देह-वृत्तिषु मा पत।**' '**···चित्त-वृत्तिषु मा तिष्ठ···।**'

'**चित्तं दूरे परित्यज्य, योऽसि सोऽसि स्थिरो भव।**' इत्यादि—'योग-वाशिष्ठ'।

'**तन्त्र-शास्त्र**' में '**आवरण-पूजा**' का यही तात्पर्य है और '**पुष्प-समर्पण**' से '**चित्त-वृत्ति-समर्पण**' का ही बोध होता है। ऐसा '**योग-वाशिष्ठ**' भी कहता है—'**विचित्र-चेष्टा-रूपेण, शुद्धात्मनं समर्चयेत्—नि० प्र० पू०, ३९-३७।**

'**तन्त्रों**' में "**पुष्प-प्रतीक**'-वृत्तियों का विशद् उल्लेख है (देखिए '**महा-निर्वाण, तारा-रहस्य**' आदि)।

'**वेदों**' में भी इसी भाव के द्योतक '**रूपक**' हैं। यथा—'**इन्द्र**' ने '**वज्र**' से '**वृत्र**' को मारकर '**वर्षा करवाई**'। यहाँ यह तात्पर्य है कि '**बादल**' हैं, किन्तु '**वृष्टि**' नहीं होती क्योंकि ये बादल

'**अवरोधक शक्ति**' से आवृत्त हैं। '**इन्द्र**' अर्थात् '**राजा**' ने देखा कि '**प्रजा**' को '**जल**' के बिना कष्ट हो रहा है और '**अन्न**' न होने से उसका नाश होगा। बस, उन्होंने '**वज्र-शक्ति**' का प्रयोग कर '**अवरोधन-शक्ति**' को नष्ट कर दिया। इस पर '**वर्षा**' हुई। इसी प्रकार '**ऐन्द्री शक्ति**' अर्थात् इन्द्रियों की रानी—परा '**मनः-शक्ति**' हम '**पाश-बद्ध**' जीवों के '**आवरण**' अर्थात् आँख के पर्दे को '**वज्र**' अर्थात् कठोर '**कुठाराघात**' से हटा देती है।

'**दुःख**' ही '**सुख**' का कारण है—'**दुःखैर्विना सुखं नोपलभ्यते।**' '**दुःखाग्नि**' से ही '**मन**' के '**मल**' दग्ध होते हैं। इस '**प्रणमन-मन्त्र**' द्वारा '**उद्बोधिनी-शक्ति**' से जागृत् होकर '**नारायणी**' अर्थात् **समष्टि-व्यष्टि-रूपिणी** '**आत्म-शक्ति**' से मिलन होता है।

शिव - दूती - स्वरूपेण, हत-दैत्य-महा-बले!।
घोर-रूपे महा-रावे!, नारायणि! नमोऽस्तु ते।।१८।।

टीका—हे **शिव** को दूत बनानेवाली, **दैत्य महा-सेना** को मारनेवाली, भयानक रूपवाली, **महा-शब्द** करनेवाली **नारायणि!** तुमको प्रणाम हो।

व्याख्या—'**शिव-दूती—शिवं दूतयति दूतं करोति, इति शिव-दूती**' पद से अन्तस्तात्पर्य है उस '**धर्म-शक्ति**' से, जो शान्ति-स्वरूप '**शिव**' को विवेक-रूप विद्रोही '**अनात्माकार-वृत्तियों**' को समझा कर '**ठण्डा**' करने को भेजती है। तात्पर्य कि विवेकानुकूल वातावरण बनाना चाहती है। जब इससे काम नहीं चलता, तो '**रौद्री शक्ति**' से काम लेती है। इसका उदाहरण भगवती '**महा-शक्ति**' द्वारा शान्ति-प्रस्ताव-वाहक '**शिव**' को असुर-राज '**शुम्भ**' के पास भेजना है (देखिए आठवाँ अध्याय)। भाव यह है कि भगवती '**चेतावनी**' देती हैं।

हम '**व्यष्टि**' जीवों को भी उक्त बात का अनुभव होता रहता है। सद्-बुद्धि-स्वरूपिणी '**शिव-दूती**' हममें रहनेवाले **अहङ्कारादि** '**षड्-रिपुओं**' को '**चेतावनी**' देती रहती हैं। यदि हम '**संस्कार-वश**' मान जाते हैं, तो कठोर प्रत्याघात नहीं सहने पड़ते अन्यथा इन शत्रुओं का नाश होता है अर्थात् '**दर्प**' आदि चूर्ण होते हैं।

इस '**शक्ति**' का एक काम तो सरल होता ही है। वह है '**आसुरी शक्ति**' के तेज का ह्रास। जीव स्वभाव-वश **अनात्माकार-वृत्तियों** का त्याग न भी कर सके, परन्तु '**सद्-बुद्धि**' एक बार तो इन वृत्तियों को '**शक्ति-हीन**' कर ही देती है। इसी कारण इसकी लक्षणा है—'**हत-दैत्य-महा-बला—'हतं दैत्यानां महा-बलं यया सा।**'

'**चेतावनी**' का रूप '**घोर**' अर्थात् '**भयावह**' होता है। यह भयावहत्व भावी आशङ्का-जन्य है। यह बाह्य रूप है। '**अन्तर**' में तो पूर्ण '**सौम्य**' रूप है, जिसमें '**दया-रूपी सागर**' आनन्द की लहरें उछालता रहता है—'**चित्ते कृपा, समर-निष्ठुरता0।**' यही '**आनन्द-तरङ्ग**' अर्थात् '**मा भैः**' की वाणी जोर-जोर से घोषित करती रहती है। इसी कारण इसकी एक लक्षणा '**महा-रावा**' है।

आओ शाक्त बन्धु! हम भी '**अन्तर्नाद**' की '**अभय-वाणी**' सुनने की चेष्टा करें। यह भी एक प्रकार का '**नादाऽनुसन्धान**' है, जिसकी प्राप्ति से ही '**बिन्दु-ज्ञान**' होता है।

दंष्ट्रा कराल-वदने, शिरो-माला-विभूषणे!।
चामुण्डे मुण्ड-मथने!, नारायणि! नमोऽस्तु ते।।१९।।

टीका—हे बड़े-बड़े '**दाँतों**' के कारण '**रौद्र**' मुखवाली, '**मुण्ड-माला**' धारण करनेवाली, '**चण्डासुर**' को मारनेवाली, '**मुण्ड-मथन**' करनेवाली '**नारायणी**' महा-शक्ति! तुमको प्रणाम हो।

व्याख्या—'**दंष्ट्रा—दंश्—ष्टन्—टाप्**' के कारण ही इसका '**वदन**' या मुख-मण्डल '**कराल**' दीखता है। '**दंष्ट्रा**' का वाच्यार्थ है '**लम्बा दाँत**', परन्तु इससे '**कुतरनेवाली शक्ति**' का बोध होता है। इससे छोटी-छोटी '**उपाधि**' हटाई जाती है। यह लक्षणा '**दश महा-विद्याओं**' में से '**प्रथमा काली**' और '**द्वितीया तारा**' की है। इस लक्षणा की दार्शनिक व्याख्या '**श्रीकाली-कल्पतरु**' और '**श्रीतारा-कल्पतरु**' में देखिए। यहाँ '**चण्डासुर**' को मारनेवाली '**काली-शक्ति**' है, जिसकी एक संज्ञा इसी हेतु अर्थात् '**चण्ड-मुण्ड**' के मारने पर '**चामुण्डा**' हुई—

यस्माच्चण्डं च मुण्डं च, गृहीत्वा त्वमुपागता।
चामुण्डेति ततो लोके, ख्याता देवि! भविष्यसि।।

यहाँ पुराणोक्त '**काली**'-शक्ति के रूप में '**नारायणी**' का प्रतिपादन है। इस '**काली**' धर्म-शक्ति से समष्टि-स्थित और व्यष्टि-स्थित '**चण्ड**' और '**मुण्ड**' असुरों अर्थात् विशिष्ट '**दोनों आसुरी सर्गों**' का नाश होता है।

'**चण्ड**' और '**मुण्ड**' असुर-द्वय '**दृप्त-वृत्ति**' और '**खण्डाकार-वृत्ति**' के द्योतक हैं। '**दृप्ति-वृत्ति**' से '**धर्म**' का उल्लङ्घन होता है अर्थात् '**सद्-विवेक**' नष्ट होता है और '**खण्डाकार-वृत्ति**'—व्यवसायात्मिका बुद्धि है। '**मुण्ड-मथना**' पद का यही रहस्यार्थ है कि '**मुण्ड-मुडि खण्डने**' अर्थात् '**खण्डाकार-वृत्ति**' का विलोड़न करनेवाली अर्थात् भयङ्कर असार पदार्थ को फेंक कर अर्थात् '**खण्डाकार**' या '**द्वैत वृत्ति**' को छान-बीन कर दूर हटानेवाली।

'**शिरो-माला-विभूषणा**' पद से ऐसा बोध होता है कि **भगवती**—'शिर—श्रि—असुर उणादि' अर्थात् '**श्रेष्ठ गुणों की माला**' से विभूषिता हैं। '**तन्त्र-शास्त्र**' में इस लक्षणा से '**शब्द-ब्रह्म**'-विभूषणा (विज्ञापिता) '**पर-ब्रह्म**' का बोध होता है क्योंकि इस '**पचास दाने की माला**' का एक-एक दाना या '**मुण्ड**' अर्थात् कटा सिर एक-एक '**मातृका-वर्ण**' का द्योतक है।

लक्ष्मि लज्जे महा-विद्ये!, श्रद्धे पुष्टि-स्वधे ध्रुवे!।
महा-रात्रि महा-विद्ये!, नारायणि! नमोऽस्तु ते ।।२०।।

टीका—हे लक्ष्मी, लज्जा, महा-विद्या, श्रद्धा, स्वधा, ध्रुवा, महा-रात्रि, महा-अविद्या-रूपिणी नारायणि! तुमको प्रणाम हो।

व्याख्या–'**लक्ष्मी**' से देखनेवाली अर्थात् '**सर्व-साक्षिणी**' शक्ति का बोध होता है। अथवा इससे '**सम्पत्ति-द्वय**'–ऐहिलौकिक व पारलौकिक सम्पत्ति का बोध होता है। अथवा '**शोभा-शक्ति**' का बोध होता है, जिससे हम जीवों की शोभा है। '**तन्त्र-शास्त्र**' में इसकी पर्याय-वाचक संज्ञा है–'**सुन्दरी**'।

'**लज्जा**'-रूपिणी है। '**लज्जा**' से कर्तव्य के न करने से और अकर्तव्य के करने से जो भाव है, इसका बोध नहीं है। '**लज्जन**'-लक्षणा से '**सङ्कोचन-क्रिया**' का बोध होता है। तात्पर्य कि '**व्यवसायात्मिका**'-रूप में '**परिवर्तन-भाव**' को ही '**चित्त-वृत्ति**' की '**लज्जन-क्रिया**' कहते हैं। इस रूप में '**आत्म-शक्ति**' की यह '**धर्म-शक्ति**' जीव को '**अन्तर्मुख**' करती है।

'**महा-विद्या**' से उस विद्या या ज्ञान का बोध होता है, जिससे '**महद्-ब्रह्म**' के ज्ञान की प्राप्ति होती है अर्थात् '**पर-ब्रह्म**' के ज्ञान की प्राप्ति होती है। इसको परमात्म-गोचर '**ज्ञान-शक्ति**' कहते हैं।

'**श्रद्धा**' का अर्थ है '**श्रत्**' अर्थात् '**आस्तिक्य**' का ध्यान अर्थात् धारण-'**श्रद्धाऽऽस्तिक्यं तस्य धानम्।**' तात्पर्य कि '**आस्तिक्य**' की धारणा जिससे हो। किसी वस्तु का '**आस्तिक्य**' माननेवाले को '**आस्तिक**' कहते हैं। इसकी भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ हैं, परन्तु मुख्य यही है कि मूलाधार '**परमा-शक्ति**' या '**ब्रह्म**' या ईश्वर के अस्तित्व को मानना ही '**आस्तिक्य**' है। इसकी धारणा जिस '**ज्ञान-शक्ति**' से है, वही '**श्रद्धा**' है। यह जब तक हम जीवों में जागृत नहीं होती, हम '**अनुसन्धान-क्रिया**' में प्रवृत्त नहीं होते।

'**पुष्टि**' से शरीर-पुष्टि और आत्म-पुष्टि–दोनों का बोध होता है। यह वह शक्ति है, जो '**शरीर**' और '**आत्मा**' दोनों को पुष्ट या सबल बनाती है, जिससे '**आत्म-ज्ञान**' की प्राप्ति होती है। श्रुति कहती है–'**नायमात्मा बल-हीनेन लभ्यः।**'

'**स्वधा–स्वं आत्मानं धाति धारयति**' से आत्म-धारण वृत्ति-शक्ति का बोध होता है। तात्पर्य कि '**आत्माकार-वृत्ति**' धारण करनेवाली शक्ति का बोध होता है।

अथवा '**स्व**' से '**जीव-भाव**' का बोध होता है। इस भाव में '**अनात्माकार-वृत्ति**' धारण करनेवाली शक्ति या '**अविद्या-शक्ति**' का बोध होता है।

अथवा '**ष्विद्**' धातु से बने '**स्वधा**'-पद से '**पर**' और '**अपर रसास्वादन**' करनेवाली '**आत्म-शक्ति**' का बोध होता है।

'**ध्रुवा**' से '**नित्या**' का बोध होता है। इससे '**नियति**' का भी बोध होता है।

'**महा-रात्रि**' से '**महत्**' के '**अवसान-समय**' का बोध होता है। जिस प्रकार '**काल-रात्रि**' से '**रुद्रावसान**'-समय और '**मोह-रात्रि**' से '**विष्णु**' के '**अवसान**'-समय का बोध होता है, उसी प्रकार '**महा-रात्रि**' से '**ब्रह्मा**' के '**अवसान**'-समय का बोध होता है।

'**महाऽविद्या**' से महती या बड़ी '**अविद्या**' का बोध होता है। इसका महत्त्व इस हेतु है कि यह सब जीवों में '**आत्मावरण-शक्ति**' होकर '**प्रपञ्च**' की स्थिति बनाए रखती है। इसी को '**महा-माया**' कहते हैं, जिसके '**ज्ञान**' से '**मुक्ति**' मिलती है क्योंकि यही '**माया—मीयते अनया, सा**' है अर्थात् जिससे '**आत्मा**' का '**मान**' होता है।

मेधे सरस्वति वरे!, भूति बाभ्रवि तामसि!।
नियते त्वं प्रसीदेशे!, नारायणि! नमोऽस्तु ते।।२१।।

टीका—हे मेधा, सरस्वती, श्रेष्ठा, सत्त्व-गुणा, रजो-गुणा, तमो-गुणा, अवश्यम्भावी स्वामिनि! तुम प्रसन्न हो। **हे नारायणि,** तुमको प्रणाम हो।

व्याख्या—'मेधा' से उस '**बुद्धि-शक्ति**' का बोध होता है, जिससे सब कुछ की धारणा है—'**मेधृ सङ्गमे च मेधते सङ्गच्छते**'। संक्षेप में इससे **धारणावती बुद्धि** का बोध होता है। धारणावती से '**ब्रह्म-विद्या**' का ही तात्पर्य है।

'**सरस्वती**'-पद अनेकार्थ-वाचक है। साधारणतया इससे '**वाग्-देवता**' का बोध होता है—'**सरोऽस्त्यस्या इति सरस्वती भारती।**'

सरस्वती की '**योग-वाशिष्ठी**' परिभाषा है—'**सरणात् सर्व-दृष्टीनां कथितैषा सरस्वती**' अर्थात् सब दृष्टियों के '**सरण**' के कारण यह '**सरस्वती**' कहलाती है। संक्षेप में '**सरण**'-गुणवती से विकास या '**इवॉल्यूशन**' करनेवाली का बोध होता है। विशद ज्ञान हेतु '**सरस्वती-रहस्योपनिषत्**' देखें।

'**वरा**' का वाच्यार्थ '**श्रेष्ठा**' है। श्रेष्ठत्व का यहाँ सापेक्षिक भाव से बोध नहीं है। यहाँ परम या पर-तरा अर्थात् सर्व—श्रेष्ठा का बोध होता है।

'**भूति**' या '**विभूति**'-पद छान्दस प्रयोग है, जिसमें गुण का अभाव रहता है। इससे सत्त्व-गुणवती का बोध होता है। कारण में कार्य के उपचार योग से '**भूति**' होती है।

'**बांभ्रवी**' से '**रजो-गुण**'-प्रधाना का बोंध होता है।

'**तामसी**' पद से निद्रा-स्वरूपा, अन्धकार-स्वरूपा, आलस्य आदि '**तामसी**' सर्ग-स्वरूपा का बोध होता है।

पूर्वोक्त '**तीनों गुण**' या लक्षणावती होने के कारण '**सर्व-स्वरूपा**' है, ऐसा बोध होता है अर्थात् इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

'**नियति-नियम्यते अनया वा नियच्छति इति वा**' से प्राचीन **कर्म—वश फलोत्पत्ति** का बोध होता है। अथवा '**प्रकृति**' के **गुण-क्रम** का बोध होता है। इसी को '**काल-चक्र**' कहते हैं। इसका खण्डन करनेवाली—'**काल-कलन**' करनेवाली '**काली**' मात्र है, जिसको अघटन-घटना-पटीयसी कहते हैं।

सर्व-स्वरूपे सर्वेशे!, सर्व - शक्ति - समन्विते!।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि!, दुर्गे देवि! नमोऽस्तु ते ।।२२।।

टीका—हे अखिल विश्व-रूपिणी, अखिल विश्व की स्वामिनी, अखिल शक्ति अर्थात् सामर्थ्य की लक्षणाओं से युक्त देवि! भयों से हमारी रक्षा करो। हे दुर्गा देवि! तुमको प्रणाम हो।

व्याख्या—'**सर्व-स्वरूपा**' के दो अर्थ हैं—एक तो जगत् में जितने पदार्थ हैं, सब इसी '**एक**' के रूप हैं और दूसरा यह कि यही हमारी '**सर्वस्व**' अर्थात् एक-मात्र धन या सम्पत्ति है।

पूर्व-पक्ष में एक-जीव-वाद सिद्धान्त-समर्थक '**एकोऽहं बहु-स्याम**'—'**श्रुति-वाक्य**' के अनुसार यही अपने को लीला के निमित्त '**सर्व-रूप**' में परिणत करती है। पर-पक्ष में यहाँ '**मूल-सत्ता**' सबकी '**सर्वस्व-रूपा**' है क्योंकि हमारा यही **आध्यात्मिक, दैविक** और **भौतिक—कायिक, वाचनिक** और **मानसिक सम्पत्ति** या '**शक्ति**' है। हम जीव अर्थात् '**पाश-बद्ध**' भूतों की क्या कथा, '**शिवों**' की भी यही सर्वस्व या '**शक्ति**' है, जिसके बिना '**शिव**' भी '**शव**' अर्थात् अकर्मण्य होते हैं।

'**सर्वेशा**'-पद के भी दो अर्थ हैं—'**सर्व**' नाम प्रपञ्च-जात-व्यक्ति मात्र का है और '**सर्व**' नाम '**शिव**' का भी है। इस प्रकार यह अखिल '**विश्व**' और '**शिव**' की स्वामिनी है, ऐसा बोध होता है। अथवा '**शिव-सिद्धान्त**' के अनुसार '**शिव**' जिसके स्वामी हों, वह—'**शिव ईशो यस्याः सा**' ऐसा अर्थ है, परन्तु यह अर्थ युक्त नहीं है क्योंकि '**शिव**' स्थाणु हैं अर्थात् निश्चल हैं। इनको अर्थात् **पदार्थ** या '**मैटर**' को चलानेवाली **प्राण-शक्ति** 'स्पिरिट' या '**इनर्जी**' यही है। इस प्रकार यही स्वामिनी है; ऐसा ही अर्थ युक्त है।

'**सर्व-शक्ति-समन्विता**' से यह बोध होता है कि **धर्म-शक्ति** या '**पोटेंशियल इनर्जी**' में विकासात्मक, सङ्कोचात्मक आदि विविध शक्तियाँ हैं, जिनको आधुनिक विज्ञान ने '**काइनेटिक**', '**केमिकल**', **मैग्नेटिक**' आदि संज्ञाएँ दे रखी हैं। वस्तुतः '**शक्ति**' एक ही है, जिसे '**मदर पावर**' कहते हैं। इसी की गुण-प्रक्रियानुसार विविध संज्ञाएँ हैं। इसी हेतु इन '**धंर्म-शक्तियों**' को भिन्नाभिन्न अर्थात् ऊपर से भिन्न होते हुए भी अभिन्न या '**एक**' कहते हैं।

'**भयेभ्यः**' अर्थात् **भयों से रक्षा** करो। यद्यपि '**भय**' एक ही है—'**द्वैत-भय**', परन्तु यह '**तीनों प्रकार के भय**' को दूर करनेवाली है। इसी हेतु बहु-वचनान्त पद का प्रयोग है और '**नारायणी**' शक्ति का '**दुर्गा-शक्ति**'-स्वरूप में सम्बोधन है क्योंकि जिसके नामोच्चारण से मृत्यु भी भागती है—**दूरं हि अस्या मृत्युर्दूर हवा अस्मान् मृत्युः**'—श्रुति।

फिर '**श्रुति**' कहती है कि इसके '**ज्ञान**' से '**पाश**' कटते हैं—'**ज्ञात्वा देवं सर्व-पाशाप-हानिः**'—श्वेताश्वतर उपनिषद्।

इसीलिए '**स्मृति**' भी कहती है—

प्रभाते स्मरेन्नित्यं यो, दुर्गा-दुर्गाक्षर-द्वयम्। आपदस्तस्य नश्यन्ति, तमः सूर्योदये यथा॥'

'**त्राहि**' रक्षण- प्रार्थना से '**अमरत्व**'-भाव प्रदान करने की प्रार्थना का बोध होता है। '**रक्षण एव**' ऐसा स्पष्ट उल्लेख '**शक्ति-भाष्य**' में है (देखिए, '**ब्रह्म-सूत्र**' का '**प्राणाधिकरण**')।

एतत् ते वदनं सौम्यं, लोचन-त्रय - भूषितम्।
पातु नः सर्व-भीतिभ्यः, कात्यायनि! नमोऽस्तु ते।।२३।।

टीका—**हे कात्यायनि!** तुम्हारा तीन नेत्र से शोभित सौम्य मुख-मण्डल सब प्रकार की आपदाओं से हम सबकी रक्षा करे। तुमको प्रणाम हो।

व्याख्या—'**सर्व-भीतिभ्यः**' के स्थान में पाठान्तर मिलता है—'**सर्व-भूतेभ्यः**'। '**भूत**' से '**पञ्च-महा-भूतों**' का बोध होता है, जिनसे '**विषय**' ग्रहण होते हैं। '**सर्व-भूत-स्वरूपा**' हो, ऐसा '**ज्ञान**' देकर भूत-भय या '**द्वैत-भय**' का नाश करो, यह प्रार्थना है।

'**कात्यायनी**'-पद से '**रक्षण-कर्त्री**' का बोध होता है। यहाँ '**रक्षण-क्रिया**' है—'**अशुद्ध त्रिपुटी**' से अर्थात् '**ज्ञातृ, ज्ञान**' और '**ज्ञेय**' के '**अयथार्थ ज्ञान**' से। ये ही '**भीति**' या '**भीति के हेतु**' हैं। इनका '**नाश**' या दूरीकरण होता है—'**शुद्ध त्रिपुटी**' के यथार्थ '**ज्ञान**' से, जिसके द्योतक हैं—'**लोचन-त्रय**', जिसके एकाधिक तात्पर्य हैं (देखिए, '**श्री तारा-कल्पतरु**')।

'**भय**' या भीति मात्र का कारण है—'**द्वैत बुद्धि**'। इसी '**द्वैत बुद्धि**' को दूर करने के निमित्त उक्त '**प्रणाम-श्लोक**' है। '**द्वैत-भाव**' को दूर करके ही यथार्थ प्रणमन अर्थात् '**संवेश**' हो सकता है।

ज्वाला - करालमत्युग्रमशेषासुर - सूदनम्।
त्रिशूलं पातु नो भीतेः, भद्र-कालि! नमोऽस्तु ते ।।२४।।

टीका—ज्वाला से भीषण, उग्र और समस्त असुरों का संहार करनेवाला '**त्रिशूल**' हम लोगों की भय से रक्षा करे। **हे भद्र-कालि!** तुमको प्रणाम हो।

व्याख्या—'**ज्वाला-कराल**' से प्रकाशाधिक्य से भयावह वस्तु का बोध होता है। भयावहत्व दोष नहीं है क्योंकि गुणाधिक्य में यह स्वाभाविकतया सन्निहित है। फिर यह ग्राहकत्व-परिमाण से ग्राह्य या अग्राह्य है। एक ही वस्तु देवदत्त के लिए '**कराल**' है, तो भवदत्त के लिए '**सौम्य**' है। '**त्रिशूल**', जिसका विशेषण '**कराल**' है, असुरों के हेतु भय-प्रद हैं, किन्तु भक्तों के लिए अभय-प्रद है। यह '**अति उग्र**' है। इस लक्षण से ऐसा बोध होता है कि यह आयुध बहुत शीघ्रतया काम करनेवाला है। '**उग्र**' देवता प्रसन्न होने से शीघ्र वर-प्रद होते हैं, किन्तु साथ ही तनिक-सा व्यतिक्रम नहीं सहन कर सकते। इसी प्रकार यह **त्रिशूल** है।

'त्रिशूल' पद से–**'त्रि-अवयव-शूल यद्वा त्रिशूलः, शिखा यत्रेत त्रिशूलम्'** अर्थात् त्रि-शिखावाले **'आयुध'** का बोध होता है। इसी आयुध से कर-कोटर अर्थात् मुट्ठी में तीनों लोकों को रखती है–**'त्रिशूलं तेन त्रैलोक्यं, गृहीतं कर-कोटरे'** (योग-वाशिष्ठ)।

तीनों लोकों से **'ज्ञातृ, ज्ञान, ज्ञेय त्रिपुटी'** का बोध होता है। **त्रिशूल** इसी **'त्रिपुटी'** के भय अर्थात् बन्धन से हमें मुक्त करता है।

'भद्र-काली' से भद्र-कारिणी, भद्र-कारी–**'कर्म-एयण्। रलयोर- भेदाल्लः'** अर्थात् भद्र या **'कल्याण'** करनेवाली का बोध होता है।

हिनस्ति दैत्य-तेजांसि, स्वनेनापूर्य या जगत्।
सा घण्टा पातु नो देवि!, पापेभ्यो नः सुतानिव।।२५।।

टीका–हे देवि ! जो जगत् को अपने **'नाद'** से भर कर **आसुरी सर्गों के सामर्थ्य का नाश** करता है, वह **'घण्टा'** हमको पुत्रों के सदृश पापों से बचाए।

व्याख्या–'घण्टा'–'हन् ट-टाप्' से **'अनाहत्त नाद'** का बोध होता है, जिससे अखिल विश्व परि-पूरित है।

जिस प्रकार **'आद्या'** भगवती की **'घण्टा-शक्ति'** के **'नाद'** से जगत् की **'सृष्टि'** और **'स्थिति'** होती है, उसी प्रकार **'व्यष्टि'** में भी है। जब तक **'नाद'** है, तभी तक **'प्राण-शक्ति'**-रूपिणी **'आद्या-शक्ति'–'जीव-शरीर'** में रहती है। **'नाद'** के अभाव से **'प्राण-शक्ति'** के अभाव का आशय है।

'घण्टा'–सर्व-वाद्य-मय है अर्थात् सभी प्रकार के **'शब्द'** इससे निकलते हैं। जिस प्रकार **'विन्दु'** की ध्वनि या **'नाद'** से सभी **'मातृका-वर्ण'** निकलते हैं। इस **'ध्वनि'** से चराचर जगत् व्याप्त है (देखिए, **शक्ति-सङ्गम-तन्त्र**)–

विन्दु-ध्वनि-सकाशात् तु, प्रत्येकं वर्ण-जातयः।
मातृकार्णास्तदा जाता, अक्षरेति तदाऽभवत्।।
ध्वनिना व्याप्तमखिलं, जगदेतच्चराचरम्।

'विन्दु'-रूपी **'घण्टे'** के **'नाद'** या ध्वनि को **'दैत्य-तेज-नाशक'** कहते हैं क्योंकि इसके **'श्रवण'** से ही हमारे **'आसुरी'** भाव निर्बल हो जाते हैं। **'आत्मानुसन्धान'**-रूपी **'पर-पूजा'** का प्रथम सोपान है–**'नादानुसन्धान'**।

'नाद-श्रवण' से विन्दु-ज्ञान या **'आत्म-ज्ञान'** होने लगता है। इस **'साधना'** की अपनी एक विशिष्ट प्रणाली या क्रम है, जिसकी प्रधानता **'तान्त्रिक साधना'** में सर्वत्र है।

'त्रिशूल' अर्थात् **'त्रिपुटी-ज्ञान'** के पश्चात् घण्टा-रूपी **'आयुध'** काम करता है, जिसके पश्चात् **'खड्ग'** अर्थात् अनात्म-प्रतीति-विलय-कारक या **'ज्ञान'**-रूपी **'असि'** साधन-समर में काम करता है।

'सुतान् इव पातु' अर्थात् पुत्र की रक्षा जिस प्रकार माता करती है। इस पद से यह तात्पर्य है कि जो वह है, वही मैं हूँ। **'आत्मा वै जायते पुत्रः'** अर्थात् **'आत्मा'** ही **सुत** या **'पुत्र'** का रूप लेता है। इससे **एक-जीव-वाद** की पुष्टि होती है। इस वाक्य के उच्चारण-समय पाठ-कर्त्ता को इसी भाव का स्मरण रहना चाहिए, अन्यथा इस पद के उच्चारण से वाञ्छित लाभ नहीं होगा।

असुरासृग्-वसा-पङ्क-चर्चितस्ते करोज्ज्वलः।
शुभाय खड्गो भवतु, चण्डिके! त्वां नता वयम्।।२६।।

टीका—असुरों के असृक् अर्थात् रुधिर और मांस-पङ्क से लिप्त तुम्हारा कर-शोभित खड्ग हम लोगों के हेतु कल्याण-दायक हो। हे **चण्डिके!** तुम्हारे सामने हम प्रणत हैं।

व्याख्या—'खड्ग'—त्रिशूल और घण्टा के सदृश स्थूल-रूप का नहीं है। रूपकच्छल में यह **'ज्ञान'** है। **'शिव-धर्मोत्तर'** कहता है—

'तस्मात् ज्ञानासिना तूर्णमशेषं कर्म-बन्धनम्।
कामाकाम-कृतं छित्वा, शुद्धश्चात्मनि तिष्ठति।'

'योगिनी तन्त्र' भी कहता है—**'पाप-पुण्य-पशुं हत्वा, ज्ञान-खड्गेन शाम्भवि!'**

इस प्रकार **'खड्ग'—महा-शस्त्र** है, जिसके सहकारी अन्य सब आयुध हैं। इसी से **'आद्या'** महा-विद्या के हांथ में यही एक-मात्र **'आयुध'** है।

यह **'खड्ग'** असुरों के शोणित और मांस-पङ्क से चर्चित है। इसने **भगवती** के कर को **'उज्ज्वल'** कर रखा है। इस **'खड्ग'** से **'ज्ञान'** का बोध होता है, जो **रक्त** अर्थात् **रजो**-गुणात्मक आसुरी भावों के **'पाशों'** को छिन्न करता है। इस क्रिया के सम्पादन में यह स्वयं चर्चित या रञ्जित होता है।

'मांस'-रूपी **'रक्त'** या **'राग'** से कठोर या घनीभूत **'आच्छादक भावों'** का बोध होता है—**'आच्छादने'**। तात्पर्य कि **'रजो-गुण'** को इसके आवरण के साथ नष्ट करनेवाला ज्ञान-रूपी **'खड्ग'** चमकता है अर्थात् **'सत्त्व-गुण'** प्रकाशित होता है।

'भगवती चण्डी' के प्रति **'नमस्कार'** का यही तात्पर्य है कि **'ज्ञान-आयुध'** या विज्ञान-धर्म या शक्ति-शालिनी अपने इस आयुध के गुणानुसार हमारे रजो-गुणात्मक **'आसुरी'** भावों का नाश करे।

अब उक्त धर्मी-शक्ति **ब्रह्म**-रूपिणी '**चण्डी**' के '**ईश्वर-भाव**' अर्थात् '**तुष्टावस्था**' और '**रुष्टावस्था**' की '**क्रिया-द्वय**' अर्थात् '**सुख**' और '**दुःख**'-प्रदायक गुणों का प्रतिपादन होता है। इससे '**धर्मी-शक्ति**' और '**धर्म-शक्ति**' में अभिन्नता सिद्ध होती है।

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा,
रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान्।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणाम्,
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति।।२७।।

टीका—(तुम) '**प्रसन्न**' होकर '**अशेष**' अर्थात् समस्त '**रोगों**' अर्थात् दुःखों का नाश करती हो और '**रुष्ट**' अर्थात् अप्रसन्न होकर समस्त अति प्रिय '**मनोरथों**' का नाश करती हो। तुम्हारे '**आश्रित**' जनों को '**विपदाएँ**' नहीं आतीं, वे '**आश्रयता-भाव**' पाते हैं।

व्याख्या—'**तोषण**' से **तादात्म्य-भाव** का तात्पर्य है। '**तादात्म्य**'-**भाव** के आने पर '**जीव**' के '**त्रि-ताप**' स्वतः भाग जाते हैं। '**रोग**' से दुःख देनेवाले का बोध होता है—'**रुजन्तीति रोगाः।**'

दुःख, **ज्वरादि** केवल शारीरिक ही नहीं होते। ये बाह्य या स्थूल-दृष्ट्या दो प्रकार के अर्थात् '**शारीरिक**' और '**मानसिक**' होते हैं, पर सूक्ष्म-दृष्ट्या तीन प्रकार के होते हैं, जिनको '**आधि- भौतिक, आधि-दैविक** और **आध्यात्मिक**' (आधि-आत्मिक) कहते हैं।

'**रोष**' से '**द्वैत-भाव**' का तात्पर्य है। **द्वैत-भाव** ही सब दुःखों का मूल होता है। इसकी '**रुष्टावस्था**' से खण्डाकार-जन्य '**अनात्माकार**'-वृत्ति-स्थित '**जीवावस्था**' का बोध होता है। '**जीव**' जब '**प्राण-धर्म**' की अवज्ञा या अवहेलना करता है, तो **प्राण-धर्म**-रूपिणी '**महा-शक्ति**' स्वतः इससे '**रुष्ट**' या पृथक् हो जाती है। यह '**रुष्टता**'—**महा-शक्ति की असहयोगावस्था** का द्योतक है। इसका स्वाभाविक फल है—**इष्ट-वस्तु** अर्थात् '**सुख**' की अप्राप्ति।

'**सकलाभीष्ट काम-वासनाओं का नाश करती है**'—इस पद का एक गूढ़ अर्थ यह भी है कि '**रुष्ट**' होकर भी यह '**भगवती**' हमारी '**काम-वासनाओं**' का नाश कर हमारा '**कल्याण**' करती है क्योंकि '**वासना-क्षय**' के बिना '**मुक्ति**' की प्राप्ति नहीं होती। यह '**रुष्ट**' होकर भी हमारी भलाई ही करती है।

'**आश्रित**'—'**आसमन्तात् श्रितः लग्नः**' पद से सब प्रकार से '**तल्लग्नता**' का बोध होता है। इस तल्लंगनता या तल्लीनता से तात्पर्य है '**प्राण-महा-शक्ति**' से, न केवल '**ज्ञान-भाव**' से अपितु '**क्रिया-योग-भाव**' से भी।

बिना '**क्रिया-योग**' के '**ज्ञान-भाव**' चिर-स्थायी नहीं होता। इसी से '**श्रुति**' कहती है—'**योग-हीन ज्ञान**' मोक्ष नहीं देता और '**ज्ञान-हीन योग**' भी '**मोक्ष**' नहीं दे सकता। अतएव '**योग**' को '**ज्ञान**' से युक्त करके ही अभ्यास करना चाहिए।

'**तुम्हारे आश्रित आश्रयता को प्राप्त करते हैं**'—इस पद से यह बोध होता है कि वे '**नर**' अर्थात् न्याय बर्तनेवाले (**नृणन्ति नरन्ति वा नयेन व्यवहरन्ति इति नराः। नहि नराकृति-धराणां जन्तूनाम्**) जो तुम्हारे '**आश्रित**' अर्थात् '**त्वद्-गत भाववाले**' हैं, वे दूसरे के '**आश्रय**' या सेव्य बनते हैं। यह स्वतः-सिद्ध है कि **एक-सत्ताक पदार्थ** की गुण-समानता रहती है।

'**भगवती**' की '**आश्रयता**' अर्थात् सेव्यमानता एक गुण है। अतः **भगवती** में मिल जाने से यह गुण मिलनेवालों में भी आ जाता है।

एतत् - कृतं यत् कदनं त्वयाऽद्य,
धर्म - द्विषां देवि! महाऽसुराणाम्।
रूपैरनेकैर्बहुधाऽऽत्म - मूर्तिम्,
कृत्वाऽम्बिके! तत् प्रकरोति काऽन्या?॥२८॥

टीका—हे देवि जननि! आज जो तुमने अपने को '**बहु**' अर्थात् विविध रूपों में प्रकट कर '**धर्म**' के द्वेषी बड़े-बड़े असुरों का '**कदन**' अर्थात् वध किया है, ऐसा तुम्हारे सिवा कौन कर सकता है अर्थात् कोई भी नहीं कर सकता।

व्याख्या—'**देवी**' से व्यवहार-शीला का बोध होता है और '**अम्बिका**'-पद से '**विश्व-जननी**' या **विश्व-पालयित्री** का। **व्यवहार-कुशला माता** ही सुचारु रूप से सन्तान का पालन करनेवाली हो सकती है।

यह '**एक**' ही है, साथ-साथ '**बहु**' या '**अनेक**' भी। इस '**एकत्व**' और '**बहुत्व**'-विरोधी '**गुण-द्वय**' का '**समन्वय**' हम अज्ञानी नहीं कर सकते। इसी से हम लोगों की '**शिक्षा**' के निमित्त ऐसा कहा गया है, जिससे हम '**मनन**' करके इसकी '**अनुभूति**' प्राप्त करें। यही '**चरम**' ध्येय है। इसी प्राप्ति के हेतु इतने दर्शन, इतने उपनिषद्, इतने शास्त्र हैं, परन्तु साथ-साथ यह भी ध्यान में रखना उचित है कि जो '**भगवती**' के '**निरञ्जन-रूप**' को ही मानकर बहुधा व्यक्त '**मूर्तियों**' को मिथ्या कहते हैं, वे भारी भ्रम में हैं क्योंकि जब तक '**जगत्**' की प्रतीति है, तब तक इस **मूर्ति**-स्वरूप या '**मूर्त्त ब्रह्म**' को, जिसके अस्तित्व को '**श्रुतियाँ**' भी मानती हैं, '**मिथ्या**' कहकर उड़ा नहीं सकते।

'**रूपं रूपं प्रति-रूपो बभूव**' कहकर '**श्रुतियाँ**' सर्व-रूपत्व या '**बहु-रूपत्व**' को स्वीकार करती हैं। विशेषता यही है कि '**बहु**' या सर्व-रूप में व्यक्त होकर भी इसका '**एक-स्वरूपत्व**'

अक्षुण्ण रहता है, जिसे '**अनुपहित चेतना**' कहते हैं। यह '**समष्टि**' में भी है और '**व्यष्टि**' में भी। यह निष्क्रिय है। इसको '**अन्तरात्मा-द्रष्टा ब्रह्म**' कहते हैं। '**जीवात्मा-रूप**' में '**यही**' सब कुछ करती है।

इसके अतिरिक्त '**अन्य**' या दूसरी कोई '**शक्ति**' नहीं है। इससे '**धर्मी-शक्ति**' और '**धर्म-शक्ति**' का '**अभेदत्व**' सिद्ध होता है। इन '**धर्म-शक्तियों**' का काम है—'**आसुरी भावों को दबाना**'।

हम भी ऐसा कर सकते हैं। तात्पर्य कि हममें कौन-कौन सी '**धर्म-शक्तियाँ**' हैं, उनका '**स्वरूप-ज्ञान**' प्राप्त कर '**योग-क्रिया**' द्वारा, जिसे '**प्राण-यज्ञ**' भी कहते हैं, पापात्मक '**आसुरी सर्गों**' का '**कदन**' अर्थात् दलन कर सकते हैं।

आवश्यकता है—'**सद्-गुरु**' से '**रूप-ज्ञान**' सीखना, फिर इनको उपयोग में लाना। अन्यथा उक्त पद्य या मन्त्र का पक्षी-वत् पाठ निष्फल-प्राय है।

विद्यासु शास्त्रेषु विवेक - दीपे—
ष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या?
ममत्व - गर्त्तेऽति - महाऽन्धकारे,
विभ्रामयत्येतदतीव विश्वम्।।२९।।

टीका—(हे माँ! एक तरफ) '**विद्याओं**' में, '**शास्त्रों**' में, '**विवेक**' या सद्-बुद्धि दीपन करनेवाले '**आदि-वाक्यों**' में अर्थात् '**महा-वाक्यों**' में, फिर (दूसरी तरफ) '**ममता**'-रूपी बड़े अँधेरे गर्तों में अर्थात् खाइयों में तुम्हारे सिवा और कौन भरमाता है? अर्थात् तुम्हीं '**विश्व**' को विशेष रूप से भरमाती हो।

व्याख्या—'**महा-माया**' भगवती परमेश्वरी—'**विद्या**' और '**अविद्या**' रूप-द्वय से '**जीवों**' को विशेष रूप से भरमाती है। इसी से यह '**विद्या**' भी है और '**अविद्या**' भी। यह '**विद्याओं**' में भरमाती है। इससे यह बोध होता है कि '**विद्या**' अर्थात् '**ज्ञान**' से ही विभ्रमण होता है।

'**ज्ञानं बन्धः**'—ऐसा '**शिव-सूत्र**' है। '**ज्ञान**' का अर्थ है—**संवेदन अर्थात्** '**ज्ञातृ, ज्ञान, ज्ञेय**' का भाव। यह '**भाव**' जब तक रहेगा, तब तक '**निर्विकल्प मुक्ति**' न पाकर '**जीव**' भव-चक्र में भ्रमण करता ही रहेगा।

'**तन्त्र-शास्त्र**' भी कहता है—'**मुक्तिदा गुरु-वागेका, विद्याः सर्वा विडम्बकाः**' (**कुलार्णव**) **अर्थात् गुरु-वाक् ही एक मुक्ति देनेवाली है और सब विद्याएँ विडम्बना मात्र हैं।** फिर यहाँ '**विद्यासु**' पद में बहु-वचन का प्रयोग है। **बहु-विषयी** '**ज्ञान**' से ही बन्धन होता है।

फिर '**शास्त्रों**' में भी, जो '**विवेक**' दीपन करनेवाले कहे जाते हैं अर्थात् '**सद्-बुद्धि**' देनेवाले हैं, यही भरमाती है। इससे बोध होता है कि '**शास्त्र**'-जाल में जो पड़ा, वह '**चक्कर**' ही खाता रहेगा। इसी से कहा गया है कि पुस्तकों में जो लिखी '**विद्याएँ**' हैं, उनसे सिद्धि अर्थात् '**मुक्ति**' (क्योंकि यही यथार्थ सिद्धि है) नहीं होती—

'पुस्तके लिखिता विद्या, येन सुन्दरि! जप्यते।
सिद्धिर्न जायते तस्य, कल्प-कोटि-शतैरपि॥'

श्रुति भी कहती है—'**उत्तमं तत्त्व-चिन्तनं, मध्यमं शास्त्र-चिन्तनम्**' (मैत्रेण्युपनिषत्)।

यथा-कथित विवेक-दीप अर्थात् '**दर्शन-शास्त्र**' महा-कूप या गर्त हैं, जिनमें '**पशु-गण**' गिरकर भरमते रहते हैं—'**षड्-दर्शन-महा-कूपे, पतिताः पशवः प्रिये!**' इसी से शास्त्रादेश है—'**शास्त्र को छोड़ो**'—'**पलालमिव धान्यार्थी, सर्व-शास्त्रं परित्यजेत्।**'

फिर '**आदि-वाक्य**' अर्थात् '**तत्त्वमसि**' आदि '**महा-वाक्यों**' से '**पूर्व-मीमांसा**' या '**कर्म-काण्ड**' का बोध होता है। पूर्व-पक्ष में ऐसा बोध होता है कि '**श्रुतियाँ**' एक सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं करतीं, जिससे '**भ्रम**' में पड़ना स्वाभाविक है। पर-पक्ष में ऐसा बोध होता है कि '**कर्म-काण्ड**' से '**स्वर्ग-मात्र**' की प्राप्ति है, '**मोक्ष**' की नहीं। यह सर्व-विदित है कि जिस प्रकार '**धर्म**' से '**मोक्ष**' नहीं मिलता क्योंकि '**पुण्य**' (सुकृतियों) के फल-भोग के हेतु भरमना पड़ता है, उसी प्रकार '**पाप**' (दुष्कृतियों) के हेतु भी। दोनों अवस्थाओं में '**कर्म**' के पाशों से '**जीव**' बँधा ही रहता है।

अथवा उक्त पूर्वार्ध-पद से यह बोध होता है कि '**विद्याओं**' में, विवेक-दीप-रूप '**शास्त्रों**' में और '**महा-वाक्यों**' में तुम्हारे सिवा अन्य किसी दूसरी '**शक्ति**' का प्रतिपादन नहीं है।

फिर यही '**ममत्व**' के आश्रित संसार-रूपी '**अन्ध-कूप**' में **अयथार्थ** ज्ञान अर्थात् '**अविद्या**' शक्ति-द्वारा, जिसकी '**दो प्रधान शक्तियाँ**'—**आवरण** और **विक्षेप**-रूपिणी हैं—'**विश्व**' अर्थात् समस्त '**ब्रह्म**' से लेकर कीट-पर्यन्त को भरमाती है। यही इसकी '**लीला**' है, जिससे '**विश्व**' की स्थिति या अस्तित्व है।

उक्त पद्य से '**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**' सिद्धान्त की सिद्धि होती है।

रक्षांसि यत्रोग्र - विषाश्च नागाः,
यत्रारयो दस्यु - बलानि यत्र।
दावानलो यत्र तथाऽब्धि-मध्ये,
तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम्।।३०।।

टीका—जहाँ '**राक्षस**'-गण हैं, उग्र विषवाले '**सर्प**' हैं, '**शत्रु**' हैं, '**डाकुओं**' का दल है, '**दावानल**' में अर्थात् वनाग्नि में और '**जलों**' में तुम ही तत्-तत् स्थानों में रहकर '**विश्व की रक्षा**' करती हो।

व्याख्या—यह '**जीवों**' को केवल भरमानेवाली ही नहीं है, अपितु '**रक्षा**' अर्थात् '**अन्तर्मुख**' करके '**स्थिरत्व-दायिनी**' भी है, ऐसा उक्त पद्य में कहा गया है।

'**राक्षसों** ' से रक्षा करती है। **राक्षस** अर्थात् '**रक्ष्—असून्—अण्**' का शब्दार्थ ही है कि जिससे '**रक्षा**' करनी है। ये '**वायवी**'-शरीरी हैं, स्थूल रुधिर-मांसादि-गठित '**शरीर-धारी**' नहीं। इनसे '**आसुरी सर्गों**' का बोध होता है। ये हम जीवों के शरीर में '**वायु**'-रूप होकर रहते हैं, जहाँ **देवालय** '**शरीर**' में **आत्म-रूपिणी** '**देवता**' या दुर्ग-रूपी शरीर में '**प्राण-शक्ति-रुपिणी दुर्गा**' दुर्ग की '**रक्षा**' करनेवाली रहती हैं। इसी से '**तत्र स्थिता**' पद का प्रयोग है।

'**उग्र**' विष-धर '**नागों**' से रक्षा करती है। '**नाग**'-पद से साधारणतया '**सर्प**' का बोध है, परन्तु सूक्ष्म भाव से '**न—अगः**'—'**नागः**'-पद का अर्थ है—'**चञ्चल**', धावमान् पदार्थ। इससे '**चित्त-वृत्ति**' के '**स्थिरत्व-भाव**' के नाश करनेवाले भयङ्कर हिंसादि '**आसुरी भावों**' का बोध होता है।

'**अरयः**' अर्थात् '**अरि**' या रिपु-गण से शरीरस्थ '**काम-क्रोधादि षड्-रिपुओं**' का बोध होता है।

'**दस्यु-बल**' अर्थात् डाकू-दल जबरदस्ती खुलकर आक्रमण करनेवाले होते हैं। इनसे उन भावों का बोध होता है, जो '**ज्ञानियों**' अर्थात् जगे हुए जीवों पर भी आक्रमण करते हैं। इसका पता हमको '**ज्ञानिनामपि चेतांसि, देवी भगवती हि सा। बलादाकृष्य मोहाय, महा-माया प्रयच्छति**' इस उक्ति से मिलता है। इससे '**सप्त-विध मोह**' का बोध होता है, जिसका उल्लेख '**महोपनिषत्**' में है।

'**दावानल**' उस अग्नि को कहते हैं, जो वन में वृक्षों के सङ्घर्षण से उत्पन्न होती है। इसका अन्तस्तात्पर्य विश्व-भावों अर्थात् '**विषयों**' के सङ्घर्षण से उत्पन्न '**शोक-दुःखादि भावों**' से है, जो '**जीव**' को '**चिन्ता-रूप**' में सर्वदा जलाया करते हैं।

संक्षेप में '**अब्धि-मध्ये**' अर्थात् '**भव**' या संसार-रूपी '**सागर**' में भी सर्व-व्यापकत्व भाव से अवस्थिता होकर '**विश्व**' अर्थात् समस्त जीवों की '**रक्षा**' करती हो।

यहाँ पर '**परिपासि**' पद रहस्य-मय है। '**परि**' अर्थात् '**परितः**' का अर्थ है, सब प्रकार से '**पासि**' अर्थात् '**पालन**' करती हो। एक अर्थ तो यह है, जैसा ऊपर कहा गया है। दूसरा अर्थ है कि पूर्वोक्त प्रकारों में यह '**विश्व-भाव**' का पालन करती है अर्थात् अपनी '**सर्व-व्यापिका सत्ता**' को चरितार्थ करती है।

इससे हमको यह शिक्षण मिलता है कि हम '**भगवती**' की '**सर्व-व्यापकता**' समझकर अर्थात् इस भाव में दृढ़ विश्वास रखकर, '**भगवती**' को अपनी '**रक्षा करनेवाली**' समझें। ऐसा करने से हमारी यथार्थ रक्षा होगी। **तीनों प्रकारों से रक्षा** होगी अर्थात् **१. स्थूल, २. सूक्ष्म** और **३. पर-प्रकारों** से। इसमें सन्देह नहीं।

अन्य भावों की धारणा में–'**रक्षण**' में विलम्ब होता है, पर '**घट-घट- व्यापक**' भाव में नहीं। इसका एक ही उदाहरण पर्याप्त है। '**द्रौपदी**' ने अपनी '**रक्षा**' के लिए '**द्वारिका-वासी**' कहकर इस '**महा-शक्ति**' के '**कृष्ण-रूप**' का स्मरण किया था। इसी से '**महा-शक्ति**' को आने में विलम्ब हुआ। यदि '**द्रौपदी**' ने अपने शरीर में स्थित '**महा-शक्ति**' का स्मरण किया होता, तो इतना भी विलम्ब न होता। यही क्या, ऐसा भाव रहने से '**रक्षा**' की आवश्यकता ही न हो क्योंकि ऐसे '**तादात्म्य-भावापन्न**' महान् व्यक्तियों से तो '**विपदाएँ**' कोसों दूर ही रहती हैं–पास फटकने की हिम्मत नहीं होती।

विश्वेश्वरि! त्वं परिपासि विश्वम्,
विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम्।
विश्वेश-वन्द्या भवती भवन्ति,
विश्वाश्रया ये त्वयि भक्ति - नम्राः।।३१।।

टीका–तुम '**विश्व**' की ईश्वरी या स्वामिनी (होने से) विश्व का सब प्रकार से '**पालन**' करती हो। '**विश्व-शरीर**' (होने से) विश्व की '**धारणा**' करती हो। आप '**विश्व**' के ईशों की '**वन्द्या**' हैं। आपके प्रति जो भक्ति-पूर्वक '**विनम्र**' हैं, वे विश्व-जनों के '**आश्रय-स्वरूप**' हो जाते हैं।

व्याख्या–उक्त पद्य में '**कारण-कार्य**' की एकता, '**कारणों के कारण**' की सर्वोत्कृष्टता और '**परमा सत्ता**' से '**तादात्म्य**' का फल–'**विश्वाश्रयता**' का प्रतिपादन है। यह '**विश्वात्मिका**' अर्थात् **विश्व-रूपिणी** भी है अर्थात् '**कार्य**' है और इस **विश्व-रूपी कार्य की ईश्वरी** अर्थात् '**कारण**' भी है (योग-वाशिष्ठ, उ० प्र०, ३।२७)–

'कारणात् कार्य-वैचित्र्यं, तेन नात्रास्ति किञ्चन।
यादृशं कारणं शुद्धं, कार्यं तादृगिति स्थितम्।'

यह '**विश्व-व्यापिनी**' सत्ता के रूप में विश्व-नियम का सब तरह से '**पालन**' करती है। अथवा वायु, अन्न, जलादि-रूपों से विश्व-जीवों का पालन करती है। फिर '**सर्व-भूतों**' के अन्तर में रहनेवाली '**प्राण-सत्ता**' के रूप में '**विश्व**' की '**स्थिति**' को बनाए रखती है। इस '**प्राण-सत्ता**' से रहित पदार्थ का अस्तित्व नहीं है। निष्प्राण पदार्थों यथा–पत्थर, मिट्टी आदि में भी यह '**प्राण-सत्ता**' है, जिससे इन '**प्राण-हीन**' पदार्थों की भी '**स्थिति**' है।

'विश्वेश' पद से **'ब्रह्मा'** आदि **'त्रि-देव'** अथवा **'पञ्च-देव'**-रूपी **'इच्छादि महा-शक्तियों'** का बोध होता है। **'विश्वेश-वन्द्या'** पद का पर्याय-वाचक पद है—**'पराणां परमां0 '**, जिसका उल्लेख **'रात्रि-सूक्त'** में है।

वस्तुत: **'धर्म-शक्ति'** की वन्द्या **'धर्मी-शक्ति'** है क्योंकि इन **'धर्म-शक्तियों'** की **'स्वतन्त्र सत्ता'** है ही नहीं। यद्यपि सूक्ष्म-दृष्ट्या इन दोनों में अर्थात् **'धर्मी'** और **'धर्म-शक्तियों'** में भेद नहीं है, जिससे **'वन्द्य'** और **'वन्दक'** का प्रश्न ही नहीं उठता, तथापि स्थूल दृष्टि से भी यह बोध होता है कि ये **'धर्म-शक्तियाँ'** इसी एक **'धर्मी-शक्ति'** की वन्दना अर्थात् चिन्तन या **'मनन'** करती हैं, जिससे **'विभूति'** प्राप्त कर वे अपने-अपने **'कर्म-सम्पादन'** में समर्थ होती हैं।

इससे हमें यह शिक्षा मिलती है कि हम भी **'महा-शक्ति'** का पर्याप्त मात्रा में **'मनन'** कर **'विश्वेश'** या **'विश्वाश्रय'** की पदवी प्राप्त कर सकते हैं। यह **'भगवती'** जिसे चाहे, **'ईश'** की पदवी अर्थात् **'ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि'** के पद पर स्थापित कर सकती है और करती है।

'देवी-सूक्त' में भगवती स्वयं कहती हैं—

'यं यं कामये, तं तमुग्रं कृणोमि, तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्।'

'कामये' अर्थात् चाहूँ का यह भाव नहीं है कि अन्धा-धुन्ध चाहूँ। **'भक्ति-योग'** द्वारा नम्र एकीकृत महान् आत्माएँ अर्थात् **'स्वरूप-ज्ञाता'** ही **'विश्व के आश्रय'** हो सकते हैं। इससे **'कर्म-योग'** और **'ज्ञान-योग'** से **'भक्ति-योग'** श्रेष्ठ है, ऐसा बोध होता है। वस्तुत: यह सत्य है। तभी तो **'भगवान् कृष्ण'** ने भक्त-प्रवर **'अर्जुन'** से कहा है कि ('गीता', ११।५३)—

'नाहं वेदैर्न तपसा, न दानेन न चेज्यया (कर्म-ज्ञान-यागाभ्यां)।
शक्य एवं विधो द्रष्टुं, दृष्टवानसि (ज्ञानवानसि) मां यथा।
भक्त्या त्वनन्यया शक्य, अहमेवंविधोऽर्जुन!'

देवि! प्रसीद परि-पालय नोऽरि - भीते—
र्नित्यं यथाऽसुर - वधादधुनैव सद्यः।
पापानि सर्व - जगतां प्रशमं नयाशु,
उत्पात-पाक-जनितांश्च महोप-सर्गान्।।३२।।

टीका—हे देवि! **'प्रसन्न'** होओ। जिस प्रकार अभी-अभी **'असुरों'** का वध करके शत्रुओं से **'रक्षा'** की है, (उसी प्रकार) सर्वदा हम लोगों की शत्रुओं से रक्षा करो। (और) संसार के **'दुरितों'** का शीघ्र **'प्रशमन'** (शान्त) करो तथा **'पापों'** के परिणाम-स्वरूप **'उपद्रवों'** को शान्त करो।

व्याख्या—**'देवी'** से विजिगिषा-शीला अर्थात् अपने **'प्रतिद्वन्द्वी'** को **'परास्त'** करने की **'इच्छा रखनेवाली'** का बोध होता है। यह वह **'दैवी'** या **'आत्मिक'** शक्ति है, जो **'अनात्माकार-वृत्तियों'**

का '**दमन**' करनेवाली है। इसको '**प्रकाश-शक्ति**' भी कहते हैं, जिसके सामने '**तमो-रूप अज्ञान**' या '**अविद्यात्मक अनात्माकार-वृत्तियाँ**' या '**आसुरी सर्ग**' ठहर नहीं सकते।

इसकी '**प्रसन्नता**' से अर्थात् '**तादात्म्य**' से जिस प्रकार '**शुम्भ- निशुम्भादि**' द्योतित (बोधित) '**आसुरी सर्गों**' का नाश हुआ है, उसी प्रकार भविष्य में भी करने की प्रार्थना है।

यहाँ यह ध्यान में रखना उचित है कि '**त्राहि-त्राहि**' की एक-दो बार '**पुकार**' से काम नहीं चलता। '**पुकार**' हो तो ऐसी कि जिससे '**प्राण-शक्ति**' चैतन्य होकर अपना '**कर्तव्य**' ठीक से करे। एक आवृत्ति इस श्लोक–मन्त्र की कर ली कि समझ गए कि काम हो गया! यह भारी भ्रम है।

फिर जगत् के कल्याणार्थ '**सर्वे सन्तु निरामयाः**' आदि **शान्ति–प्रार्थना** करने में '**योग्यता**' की आवश्यकता होती है।

'**समष्टि-चिति**' को जगाने की अपेक्षा '**व्यष्टि-चिति**' को जगाना सरल है। '**उत्पातों**' की शान्ति के हेतु '**नव-चण्डी**', '**शत-चण्डी**' क्या–'**सहस्त्र-चण्डी यज्ञ**' भी करते हैं या करवाते हैं, परन्तु सफलता के लिए जैसा चाहिए, वैसा '**भाव**' रख नहीं पाते। अतएव निरन्तर '**आर्त-भाव**' को जाग्रत् कर '**भगवती**' की '**प्रसन्नता**' के लिए सतत ध्यान रखना चाहिए। तब '**वाञ्छित कल्याण**' की प्राप्ति होती है।

प्रणतानां प्रसीद त्वं, देवि! विश्वार्ति-हारिणि!।
त्रैलोक्य-वासिनामीड्ये, लोकानां वरदा भव।।३३।।

टीका–सम्पूर्ण विश्व, '**सृष्टि**' की पीड़ा को दूर करनेवाली हे **देवि**! तुम प्रणाम करनेवाले हम लोगों पर '**प्रसन्न**' होओ। तीनों लोक के निवासियों को तुम '**वर-दायिनी**' होओ।

***

श्रीदेवी-उक्ति

श्रीदुर्गा सप्तशती में,
जिन '**तीन गूढ़ यौगिक क्रियाओं**',
१ ज्ञान, २ कर्म, ३ भक्ति का उल्लेख विस्तृत रूप में है,
उनकी परिव्यक्ति प्रस्तुत '**देवी-उक्ति**' में,
स्वयं '**भगवती महा-चिति**' द्वारा हुई है।

*

स्वयं भगवती द्वारा कहे गए,
'**महा-वाक्यों**' का निष्कर्ष निकालना बड़ा दुरूह है।
इनसे '**तमो-गुण, रजो-गुण**' और '**सत्त्व-गुण**'—
तीनों' भावाश्रित कर्म सम्पादित हो सकते हैं।
ये क्रियाएँ '**भक्ति, कर्म**' और '**ज्ञान**' के
आधार पर की जा सकती हैं।

*

भगवती द्वारा कही गई उक्तियों की,
यथार्थ उपयोगिता,
'**सद्-गुरु**' से सीखकर,
'**क्रिया-योग**' करने में ही है।
तथापि न करने से कुछ करना अच्छा है।
इस सिद्धान्त के अनुसार पढ़ लेना भी श्रेयस्कर है,
परन्तु ऐसा '**पशुओं** अर्थात् '**बहिश्चक्षुवालों**' को ही शोभता है,
न कि '**वीरों**' अर्थात् '**अन्तश्चक्षुवालों**' को।

*

'**वीरों**' के निमित्त ही '**क्रिया-योग**' है।
'**क्रिया-योग**' को करने से ही,
'**शक्ति**' के '**साधक**' हो सकते हैं,
अन्यथा कदापि नहीं।

श्रीदेवी-उक्ति-व्याख्या

।।पूर्व-पीठिका—श्रीदेव्युवाच ।।

टीका—देवी ने कहा।

व्याख्या—अन्तः-स्थित '**प्राण-शक्ति**' से '**तादात्म्य**' होने पर **आदेश-ज्ञान** होना ही देवी के वचन सुनना है।

वरदाऽहं सुर - गणा!, वरं यं मनसेच्छथं।
तं वृणुध्वं प्रयच्छामि, देवानामुप - कारकम्।।१।।

टीका—हे देव-गणों! मैं वर देनेवाली हूँ। जिस '**वर**' की इच्छा मन से करो, वह देव-गणों का '**उपकारी**' वर माँग लो, मैं दूँगी।

व्याख्या—'**जीव**' में असुरों अर्थात् '**आसुरी**' **सर्गों** का नाश हो गया। अब **जीव** केवल '**दैवी भावाश्रित**' है। इसी से वह '**देव**' हो गया। अतः '**सुर**' पद से सम्बोधित होता है। इसके निमित्त वर की आवश्यकता नहीं रही। तब ? '**वर**' की आवश्यकता है '**अकृतोपासक**' जीवों के हेतु।

'**निष्काम**' साधक जब **कृतोपासक** होकर सफलता प्राप्त कर लेता है अर्थात् '**सिद्ध**' हो जाता है, तो इसका साधन-फल ही **विश्व-मङ्गल का साधन-स्वरूप** होता है, परन्तु विशेषता एक यह है कि **कृतोपासकों** के सुहृत् ही इनके पुण्यों से लाभ उठा सकते हैं, इनके विद्वेषी नहीं। ऐसा '**श्रुति**' भी कहती है। इसी हेतु '**देवानामुपकारकं वरं**' पद का प्रयोग है।

।।देवा ऊचुः।।

टीका—देव-गण बोले।

व्याख्या—'**दैवी सर्ग-भावापन्न जीव**'-गण वर माँगने लगे।

सर्वा - बाधा - प्रशमनं, त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि!।
एवमेतत् त्वया कार्यमस्मद् - वैरि - विनाशनम्।।२।।

टीका—हे समस्त '**विश्व**' की स्वामिनि! '**तीनों लोकों**' की सर्व-प्रकार की '**बाधाओं**' का प्रकृष्ट रूप से '**दलन**' हो और ऐसा करो कि हम लोगों के **वैरियों का विशेष प्रकार से नाश** हो।

व्याख्या—'**अखिल**' नाम सम्पूर्ण का है। इसकी '**स्वामिनी**' से प्रार्थना है कि सब प्रकार की '**बहिर्मुखी वृत्तियों**' को, जो '**आत्म-ज्ञान**' में '**बाधा**'-स्वरूप हैं, हटाओ और ऐसा करो कि हमारे

शरीरस्थ '**काम-क्रोधादि षड्-रिपुओं**' का नाश हो। यहाँ यह ध्यान में रखना उचित है कि **यथार्थ** '**वैरी**' ये '**षड्-रिपु**' ही हैं। अगर हम इनको जीत लें, तो '**विश्व**' को जीतने में विलम्ब नहीं रहता।

।।मूल-पाठ—श्रीदेव्युवाच।।

टीका—देवी भगवती ने कहा।

व्याख्या—'**बोलने**' से तात्पर्य है '**रहस्योद्घाटन**' करने का। सम्पूर्ण **सप्तशती** में जिन '**तीन गूढ़ यौगिक क्रियाओं**' का उल्लेख विस्तृत रूप में है, उनकी परिव्यक्ति आगे के '**चौदह श्लोकों**' में भगवती '**महा-चिति**' ने की है। इन '**महा-वाक्यों**' का निष्कर्ष निकालना बड़ा दुरूह है। इनसे '**तमो-गुण, रजो-गुण**' और '**सत्त्व-गुण**'—तीनों भावाश्रित कर्म सम्पादित हो सकते हैं। ये क्रियाएँ '**भक्ति, कर्म**' और '**ज्ञान**' के आधार पर की जा सकती हैं।

तात्पर्य कि '**प्रथम चरित**' से '**भक्ति-योगाश्रित**' क्रिया, '**द्वितीय चरित**' से '**कर्म-योगाश्रित**' और '**तृतीय चरित**' से '**ज्ञान-योगाश्रित**' क्रिया सम्पादित हो सकती है। तब असल बात यह है कि जिसके ये वाक्य हैं और जिसने इन तीनों क्रियाओं को समष्टि-भाव में करके दिखलाया है, वही यदि प्रसन्न होकर **कृपा-भाव** से '**सद्-गुरु-रूप**' में प्रकट होकर इनका '**शिक्षण**' दें, तो हमको इसका '**ज्ञान**' हो सकता है।

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते, अष्टा-विंशतिमे युगे।
शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येते महाऽसुरौ।।१।।
नन्द-गोप-गृहे जाता, यशोदा-गर्भ-सम्भवा।
ततस्तौ नाशयिष्यामि, विन्ध्याचल-निवासिनी।।२।।

टीका—'**वैवस्वत**' नाम के '**मनु**'-अन्तर के '**अट्ठाइसवें युग**' में पुनः '**शुम्भ**' और '**निशुम्भ**' दो महाऽसुर उत्पन्न होंगे। (तब) '**नन्द-गोप**' के घर में '**यशोदा**' के गर्भ से जन्म लेकर इन '**दोनों**' का नाश '**विन्ध्याचल-पर्वत**' पर अवस्थित होकर करूँगी।

व्याख्या—'**आठ मनु**' होते हैं। इनमें '**सातवें मनु**' का नाम है— '**वैवस्वत**'। '**विवस्वान्**'—**सूर्य** को कहते हैं। इनके प्रत्यय हैं '**वैवस्वत**'।

'**विवस्वान्**' पद का अर्थ है—'**विवः**'-वाला अर्थात् **विविध वस्तुओं** का '**आच्छादन**' करनेवाला। इससे '**प्रकाश**' और '**अन्धकार**' दोनों का बोध होता है—प्रकाशार्थ में **सूर्य** और तमोऽर्थ में **रात्रि**। पूर्व-पक्ष में प्रकाश-मय '**मनु**' अर्थात् '**ज्ञानी**' का बोध होता है।

वैसे तो '**मनु**' और '**मनुष्य**'—दोनों पद '**मन्**' धातु से, जिसका प्रयोग '**मनन**' व '**चिन्तन**' में होता है, बने हैं, परन्तु '**मनु**' और '**मनुष्य**' में भेद है। '**समष्टि-चैतन्यात्मक**' को '**मनु**' कहते हैं और '**व्यष्टि-चैतन्यात्मक**' को '**मनुष्य**' कहते हैं।

उक्त '**मनु**' के काल में अर्थात् '**विश्व**' की '**दीप्तावस्था**' में '**शुम्भ- निशुम्भ**' की उत्पत्ति होने पर अर्थात् '**प्रकाश**' के आच्छादित होने पर यह घटना घटी थी। पर-पक्ष में '**अज्ञान**'-रूपी अन्धकार से विश्व के '**आच्छादित**' होने पर यह घटना घटी थी, ऐसा बोध होता है। दोनों अर्थ युक्त हैं।

'**प्रकाश**' के अन्तर में '**अन्धकार**'-समय में '**आसुरी**' **भावों की उत्पत्ति** है और '**अन्धकार**' के मध्य में भी '**आसुरी**' **सर्गों की** उत्पत्ति है। यह जिस प्रकार '**समष्टि**' में चक्र-वत् होता रहता है अर्थात् **प्रकाश** के बाद **अन्धकार** और **अन्धकार** के बाद **प्रकाश**, जिसको **सत्य-युगादि परिवर्तन** कहते हैं, उसी प्रकार '**व्यष्टि**' में भी होता रहता है। '**समष्टि**' की अवस्था का प्रभाव '**व्यष्टि**' पर तो पड़ता ही है, '**व्यष्टि**' की अपनी भी अवस्था इसी क्रम से बदलती रहती है तथा '**समष्टि**' की दिवसावस्था में '**व्यष्टि**' की दिवसावस्था रहती है। फिर '**व्यष्टि**' की अपनी स्वतन्त्र दिवसावस्था है, जो '**समष्टि**' के साधारण नियम का व्यतिक्रमण कर सकती है अर्थात् '**व्यष्टि**' के हेतु '**समष्टि-रात्रि**' में भी दिवसावस्था है, जब '**जीव**' की '**सूर्य**' या '**दक्षिण पिङ्गला नाड़ी**' चलती रहती है। फिर जैसे आकाश-स्थित '**चन्द्र-सूर्य**' आदि की संक्रान्ति होती है, वैसे ही व्यष्टि में भी '**संक्रान्ति**' होती रहती है।

हम '**बाह्यार्थानुसन्धानी**' इसको जानते नहीं हैं, यह दूसरी बात है। इसके '**ज्ञान**' को प्राप्त करने का उपदेश **ब्रह्मर्षि** अर्थात् '**ब्रह्म-ज्ञानी**' ने '**राम**' को दिया था। उन्होंने कहा–

हे निष्पाप! '**शरीर**' में '**सोम, सूर्य**' और '**अग्नि**' की संक्रान्ति अर्थात् '**मिलन**' या संयोग के '**ज्ञानी**' बनो क्योंकि यही **यथार्थ संक्रान्ति**-समय है, बाह्य तो तृण-समान अर्थात् स्वल्प उपयोगी है।' (निर्वाण-प्रकरण, पूर्वार्ध, ८१।११८)।

संक्षेप में यह तात्पर्य है कि '**जीव**' की **सोम-शरीरावस्था** में, जब यह '**शरीर**' जड़ात्मक '**तमो-रूप**' हो जाता है, तभी '**शुम्भ**' और '**निशुम्भ**'-रूपी '**अहङ्कार**' और '**ममता**'-रूपी '**आसुरी**' **सर्ग की उत्पत्ति** होती है।

इसकी '**संहारिणी**' **शक्ति** (नन्दा-शक्ति) '**गोप**' अर्थात् '**मन**' (यहाँ '**मन**' से '**सङ्कल्प-विकल्पात्मक**' अपर मन का नहीं वरन् '**पर-मन**' का, जो '**सङ्कल्प-विकल्प-रहित**' अर्थात् स्थिर है, बोध है), जिसका नाम '**नन्द**' अर्थात् '**ब्रह्माभिमुखी**' है, उससे अर्थात् '**मानसिक शक्ति**' से उत्पन्न होती है, जिससे '**आनन्दावस्था**' का बोध होता है।

'**आसुरी भाव-द्वय**' के निधन का स्थान है–'**विन्ध्याचल**'। '**विन्ध्याचल**' से भूत या पार्थिव '**विन्ध्य-पर्वत**' का आशय नहीं है, वरन् जीव-शरीरस्थ '**विन्ध्य-अचल**' का अर्थ लेना चाहिए।

'**विन्ध्य**' का अर्थ है—**विशेष रूप से** '**दीप्त**' या **प्रकाशित स्थान**। यह स्थान शरीरस्थ '**हृदय**' या संवेदन-स्थान का द्योतक है। शास्त्रों में '**सुमेरु**' का द्योतक '**सहस्रार**' (मस्तक), '**विन्ध्य**' का द्योतक '**हृदय**' (अनाहत) और '**कुल-पर्वत**' का द्योतक '**मूलाधार-चक्र**' कहा गया है।

अत: भाव यह निकला कि '**प्राण**' या '**कुण्डली-शक्ति**' जब संवर्धित होकर '**अनाहत चक्र**' में पहुँचती है, तब इस '**आसुरी सर्ग-द्वय**' का नाश होता है।

पुनरप्यति - रौद्रेण, रूपेण पृथ्वी - तले।
अवतीर्य हनिष्यामि, वैप्रचित्तांस्तु दानवान्।।३।।
भक्षयन्त्याश्च तानुग्रान्, वैप्रचित्तान् महाऽसुरान्।
रक्ता दन्ता भविष्यन्ति, दाडिमी-कुसुमोपमाः।।४।।
ततो मां देवताः स्वर्गे, मर्त्य- लोके च मानवाः।
स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति, सततं रक्त-दन्तिकाम्।।५।।

टीका—फिर (अपने स्थान से) **पृथ्वी** पर उतर कर अति भयानक रूप से '**विप्रचित्ति**' नाम के दानव की सन्तानों को मारूँगी। उन '**उग्र**' या भयानक '**महा-असुरों**' का भक्षण करने से मेरे '**दाँत**' अनार के फूल जैसे '**लाल**' हो जाएँगे। तब स्वर्ग में देव-गण और मर्त्य-लोक में **मानव-गण** स्तवन करते हुए मुझको सर्वदा '**रक्त-दन्तिका**' कहेंगे।

व्याख्या—पूर्व पद में '**प्राण-शक्ति**' द्वारा **महा-असुर-द्वय** के वध का वर्णन है। इस पद्य में इसी शक्ति ने '**अनाहत चक्र**' से '**मूलाधार चक्र**' (पृथ्वी-तल) पर उतर कर '**प्रकृष्ट ज्ञान**' के शेष '**विरोधी सर्गों**' का वध किया है।

'**विप्रचित्ति**' नाम का एक दानव था। यह '**कश्यप**' की '**तीसरी पत्नी**' से उत्पन्न हुआ था। ऐसी **रूपकच्छलात्मक पौराणिक कथा** है। '**हरिवंश**' में भी इसकी कथा है, परन्तु इसका राहस्यिक अर्थ है–'**प्रचित्ति**' अर्थात् **प्रकृष्ट चेतना** या '**ज्ञान**' **का विरोधी**। इसी **प्रकृष्ट ज्ञान-प्राप्ति के विरोधी आसुरी भावों** को '**वैप्रचित्त**' दानव कहते हैं न कि '**विप्र**' अर्थात् '**वेद-विद्**' के '**चित्त**' से उत्पन्न भावों को, जैसा कि **श्री सत्यदेव जी** ने अपनी पुस्तक '**साधन-समर**' या '**देवी-माहात्म्य**' में लिख मारा है! यह तो साधारण बुद्धि-गम्य है कि '**वेद-वित्**' विप्रों के '**चित्त**' से **आसुरी भाव** उत्पन्न नहीं हो सकते। **जगदम्बा** अर्थात् **प्राण-महा-शक्ति** वेद-विदों के पवित्र भावों को बढ़ाएगी कि मारेगी? उक्त महाशय इस सम्बन्ध में अद्‌भुत व्याख्या करते हैं। आपका कहना है कि योगी-गण विश्व-मङ्गल के हेतु जो अभिनव कर्माशय का गठन या सङ्गठन करते हैं, उसको भी '**विप्रचित्त**' कह सकते हैं। इसको आपकी अर्थात् व्याख्याकार की '**माँ**' मारती है! कैसी

सुन्दर व्याख्या है! एक तरफ तो '**माँ**' विश्व की भलाई के हेतु '**वर**' प्रदान करती है, फिर भी '**विश्व-हित**' या '**लोकैषणा**' को—ये दोनों पद सत्यदेव जी के हैं—'**माँ**' मारती है।

समूल नाश के हेतु उक्त **संवर्धित** '**प्राण-शक्ति**' को '**पृथ्वी-तल**' अर्थात् '**मूलाधार-चक्र**' में उतरना पड़ता है और **अवशिष्ट** '**आसुरी सर्गों**' का **नाश** करना पड़ता है। इस अवस्था में इस '**प्राण-शक्ति**' का रूप '**उग्र**' हो जाता है। इसी से '**कराल-वदना**' कही जाती है।

अब उक्त '**नन्दा**' **प्राण-शक्ति** की संज्ञा बदल जाती है। इसकी संज्ञा '**रक्त-दन्तिका**' हो जाती है। इसका दार्शनिक अर्थ है—'**रजोगुण**' का '**दमन**' करनेवाली। '**रक्त**'—रजोगुणात्मक '**रागादि भावों**' का द्योतक है और '**दन्ता**' का अर्थ है—'**दमन करनेवाली**'।

भूयश्च शत-वार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि।
मुनिभिः संस्तुता भूमौ, सम्भविष्याम्ययोनिजा।।६।।
ततः शतेन नेत्राणां, निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन्।
कीर्तयिष्यन्ति मनुजाः, शताक्षीमिति मां ततः।।७।।

टीका—फिर, जब **शत-वर्ष-व्यापी** '**अनावृष्टि**' से पृथ्वी '**निर्जल**' हो जाएगी, तब '**मुनि-गण**' के '**स्तुति**' करने पर '**अयोनिजा**' अर्थात् **आप-से-आप आविर्भूत** होऊँगी। तब मुनियों को '**सौ नेत्रों**' से देखने के कारण लोग मुझे '**शताक्षी**' अर्थात् **सौ नेत्रवाली** कहेंगे।

व्याख्या—इस पद में रूपकच्छलात्मक वचनों में '**शत-वर्षीय**' **देवासुर- संग्राम** से '**पृथ्वी**' के जल-रहित अर्थात् '**आनन्द-मय परमात्मा**' से रहित होने पर '**भगवती**' के **प्रादुर्भाव** का उल्लेख है। तात्पर्य '**भगवती**' के '**महिष-मर्दिनी**' रूप के पुनः प्रादुर्भाव का उल्लेख है। यह अयुक्त नहीं है। '**महिषासुर-वध**' तीन बार हुआ है। इसका उल्लेख शास्त्र में मिलता है। इससे हमको जानना चाहिए कि '**आसुरी सर्गों**' की उत्पत्ति और '**विनाश**' अनिवार्य होने के कारण '**विश्व**' या **पिण्ड** की स्थिति तक बार-बार चलता ही रहता है।

उक्त दो पद्यों का यह तात्पर्य है कि '**जीव**' की '**शत-वार्षिकी**' आयु में '**अनावृष्टि**' होने पर अर्थात् '**सहस्रार**'-स्थित '**अमा-कला**' से '**अमृत-स्राव**' के '**सूर्य-मण्डल**' में शोषित होकर **पृथ्वी-तत्त्व** या '**मूलाधार**' पर '**अमृत-धारा**' के न आने पर '**मुनि-जनों**' अर्थात् मनन-कर्त्ताओं-द्वारा '**संस्तुता**' अर्थात् '**प्राण-शक्ति**' की सर्वज्ञता के '**ज्ञान**' से संवर्धित '**प्राण-शक्ति**'—**क्रिया-शक्ति-स्वरूपा** होकर '**भूमि**' या '**मूलाधार-चक्र**' में '**स्वयम्भू-लिङ्ग-वेष्टिन्री शक्ति**' के रूप में अपने आप सम्यक् प्रकार से जन्म लेगी अर्थात् '**चैतन्य**' होगी। इस स्वरूप में '**मनुज**' अर्थात् ज्ञानोद्भासित '**जीव**' इसको **विश्वतश्चक्षु** समझ इसे '**शताक्षी**' संज्ञा देंगे। तात्पर्य कि उक्त '**ज्ञान-योग**' से '**मनुज**'—**दिव्य दृष्टिवाले** हो जाएँगे।

ततोऽहमखिलं लोकमात्म - देह - समुद्भवैः।
भरिष्यामि सुराः शाकैरावृष्टेः प्राण-धारकैः।
शाकम्भरीति विख्यातिं, तदा यास्याम्यहं भुवि।।८।।

टीका—तब हे देवों! मैं स्व-शरीर से उत्पन्न '**प्राण-धारक शाकों**' से, जब तक वृष्टि या वर्षा होगी, तब तक '**समस्त जीवों**' **का पालन** करूँगी। तब मैं पृथ्वी-तल पर '**शाकम्भरी**' के नाम से विशिष्ट रूप से '**ख्याति**' पाऊँगी।

व्याख्या—उक्त पद्य में यह उल्लेख है कि '**समष्टि**' या '**व्यष्टि**' में जब तक '**सुधा-धारा**' की वर्षा पृथ्वी-तल या '**मूलाधार-चक्र**' तक न पहुँचकर '**तापों**' का अन्त नहीं कर देती, तब तक प्राण-शक्ति की '**प्राण-धारक**' **शक्ति**—'**जीव**' को प्राण-रहित होने से '**बचाएगी**' और बचाती है। इसी हेतु यह '**प्राण-शक्ति**'—'**शाकम्भरी**' अर्थात् '**शक्ति भरनेवाली**' कहलाएगी या कहलाती है।

उक्त उपमा कितनी अच्छी है। हम दरिद्र, जिनको अन्न नहीं जुटता, कहा करते हैं कि '**प्राण-धारण**' का एक उपाय '**शाक-सब्जी**' है। यह भी न मिले, तो शरीर से प्राण का विच्छेद ही हो जाए। इसी प्रकार '**प्राण-योग-क्रिया**' के साधन से विहीन हम लोगों को '**प्राण-महा-शक्ति**' की उप-शक्तियाँ ही एकदम '**प्राण-शक्ति-रहित**' होने से बचाती हैं। यह प्रक्रिया तब तक होती रहती है, जब तक हम **चञ्चल प्राण**-**शक्ति** को पूर्ण-रूप से संवर्धित करते हुए '**सहस्रार**' की '**अमृत-धारा**' से सींचकर उसे '**अमर**' नहीं बना देते।

'**शाक**' पद—'**शक्ति, सामर्थ्य, बल**' आदि का पर्याय-वाचक है। '**स्मृति**' कहती है कि '**दश प्रकार**' के '**शाक**' (पत्र-पुष्प आदि) होते हैं। इनका अन्तस्तात्पर्य है '**दश इन्द्रियों**' की '**शक्ति**' से। जब तक '**मानसिक शक्ति**' या '**प्राण-शक्ति**' बलवती नहीं हो पाती, तब तक इन '**दस इन्द्रियों**' की '**उप-शक्तियाँ**' ही '**प्राण**' रखने में समर्थ होती हैं।

इससे हमको यह शिक्षा मिलती है कि '**प्राण-क्रिया**' के पूर्व इन '**ज्ञानेन्द्रियों**' और '**कर्मेन्द्रियों**' की ऐसी प्रक्रियाएँ हों, जिनसे हम '**प्राण-शक्ति**' की '**संवर्धिनी**' क्रिया में शक्त हो सकें। यही यथार्थ '**शाक्त-सिद्धान्त**' है।

तत्रैव च वधिष्यामि, दुर्गमाख्यं महाऽसुरम्।
दुर्गा-देवीति विख्यातं, तन्मे नाम भविष्यति।।९।।

टीका—वहीं पर फिर (मैं) '**दुर्गम**' नाम के श्रेष्ठ '**असुर**' को मारूँगी। इसी हेतु '**दुर्गा देवी**' मेरा नाम '**विख्यात**' होगा।

व्याख्या—साधक जब '**प्राण-शक्ति**' की '**उप-शक्तियों**'-द्वारा '**प्राण**' को स्थिर रखने में '**सक्षम**' होकर '**प्राण-शक्ति**' को पूर्ण रूप से '**संवर्धित**' कर लेता है, तभी यह '**प्राण-शक्ति**'— '**दुर्गम**' नाम के बड़े '**असुर**' को मारती है अर्थात् '**सुषुम्ना-पथ**' की '**ग्रन्थि-त्रय**'-जन्य '**दुर्गमता**' को हटाती है अर्थात् '**षट्-चक्र-भेदन**' करती है। '**भेदन**' करनेवाली इस '**शक्ति**' की संज्ञा '**दुर्गा**' देवी अर्थात् '**शरीर-रूपी दुर्ग**' को प्रकाशित करनेवाली '**प्रकाश-शक्ति**' है।

पुनश्चाहं यदा भीमं, रूपं कृत्वा हिमाचले।
रक्षांसि भक्षयिष्यामि, मुनीनां त्राण-कारणात्।।१०।।
तदा मां मुनयः सर्वे, स्तोष्यन्त्यानम्र-मूर्तयः।
भीमा-देवीति विख्यातं, तन्मे नाम भविष्यति।।११।।

टीका—फिर मैं जब '**हिमाचल**' पर (अपने) शरीर को भयावह कर मुनियों की रक्षा के निमित्त '**राक्षसों**' को खाऊँगी, तब सब '**मुनि-गण**' सब प्रकार से नम्र हो मेरी '**स्तुति**' करेंगे। इस हेतु '**भीमा देवी**' के नाम से मैं '**विख्यात**' हो जाऊँगी।

व्याख्या—उक्त पद्य में '**प्राण-शक्ति**' के उस रूप का उल्लेख है, जिसमें यह '**अप्रधान आसुरी भावों**' का निःशेष रूप से '**नाश**' करती है। '**मुनियों**' अर्थात् '**प्राण-शक्ति**' के '**मनन-कर्ताओं**' की '**रक्षा**' अर्थात् उनकी '**आत्माकार-वृत्तियों**' की रक्षा के निमित्त यह '**हिमालय**' अर्थात् '**मेरु-दण्ड**' जहाँ शेष होता है, उस '**आज्ञा-चक्र**' में, जो यथार्थ रूप में '**आसुरी सर्ग**' एवं '**इन्द्रियों**' की '**कु-प्रवृत्ति**'-रूप सर्गों का '**विनाश**'-स्थान है, '**राक्षसों**' अर्थात् जिनसे आत्म-रक्षण करना होता है अर्थात् '**अनात्माकार-वृत्तियों**' को खाती है या '**लय**' करती है। '**आज्ञा-चक्र**' तक जब '**प्राण-शक्ति**' (**कुण्डली**) जाती है, तब इसका रूप बड़ा '**उग्र**' अर्थात् '**तेजो-मय**' हो जाता है। यह '**खेचरी-साधन**' से जानी जा सकनेवाली क्रिया है।

यदाऽऽरुणाख्यस्त्रैलोक्ये, महा-बाधां करिष्यति।
तदाऽहं भ्रामरं रूपं, कृत्वाऽसंख्येय-षट्-पदम्।।१२।।
त्रैलोक्यस्य हितार्थाय, बधिष्यामि महाऽसुरम्।
भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्वतः।।१३।।

टीका—जब '**अरुण**' नाम का (**असुर**) त्रैलोक्य अर्थात् '**विश्व**' में बड़ी बाधा करेगा, तब मैं असंख्य '**भ्रमर**'-रूप होकर त्रैलोक्य-कल्याण के निमित्त (उक्त) '**बड़े असुर**' को मारूँगी। तब लोग मेरी सब जगह '**भ्रामरी**' संज्ञा से स्तुति करेंगे।

व्याख्या—पूर्व पद्यों में विविध प्रकार के '**आसुरी सर्गों**' का दमन करनेवाली अर्थात् आवरण-रूप '**अविद्याओं**' को हटानेवाली विद्या या '**यौगिक क्रियाओं**' का उल्लेख था। इस पद

में **विक्षेप**-रूपी '**अरुण**' अर्थात् न जानेवाले '**विक्षेप**' भाव को दूर करनेवाली '**भ्रामरी-विद्या**' का उल्लेख है। इस विद्या के '**छः पैर**' हैं, जिनसे '**छहों चक्रों' का भेदन** होता है। इस '**विद्या**' की '**सिद्धि**' से '**जीव**' भृङ्ग-वत् '**षट्-कमलों**' के पराग और रस का '**भक्षण**' कर '**अमर**' हो जाता है। इस '**विद्या**' से '**जीव**' का **द्वि-पदत्व** (द्वैत-भाव) हट जाता है और '**षट्-पद**' अर्थात् भ्रमर होकर '**ब्रह्मानन्द-रस**' का पान करता है।

इत्थं यदा यदा बाधा, दानवोत्था भविष्यति।
तदा तदाऽवतीर्याऽहं, करिष्याम्यरि-संक्षयम्।।१४।।

टीका—इस प्रकार से जब-जब दानव-कृत '**बाधा**' होगी, तब-तब मैं प्रकट होकर '**शत्रुओं**' का नाश करूँगी।

व्याख्या—उक्त पद में अकाट्य नियम की घोषणा है। यह नियम जिस प्रकार '**समष्टि**' में लागू है, उसी प्रकार '**व्यष्टि**' में भी। मनोविज्ञान भी ऐसा ही कहता है। यह प्रतिक्रिया-रूपिणी क्रिया है।

संक्षेप में हमको इससे यह शिक्षा मिलती है कि अपनी **चञ्चल** '**प्राण-शक्ति**' के क्षीण हो जाने पर **प्राण-शक्ति-संवर्धिनी पूजा** अर्थात् '**क्रिया-योग**' करें, जिससे हमारी '**अनात्माकार-वृत्तियाँ**' नष्ट हों।

यहाँ यह उल्लेख अप्रासङ्गिक न होगा कि **समष्ट्यात्मक देवी** या '**शक्ति-माहात्म्य**' पढ़ लेने से ही यथार्थ रूप में काम नहीं चलता। इससे भविष्य के कर्म-सम्पादन की भूमिका मात्र बनती है अर्थात् '**संस्कार**' का भी वीजारोपण मात्र होता है। इसकी यथार्थ उपयोगिता है इसके अनुसार '**सद्-गुरु**' से सीखकर '**क्रिया-योग**' करने में। तथापि न करने से कुछ करना अच्छा है, इस सिद्धान्त के अनुसार '**पढ़ लेना**' भी श्रेयस्कर है, परन्तु ऐसा '**पशुओं**' अर्थात् '**बहिश्चक्षुवालों**' को ही शोभता है, न कि '**वीरों**' अर्थात् '**अन्तश्चक्षुवालों**' को। इनके निमित्त ही '**क्रिया-योग**' को करने से '**शक्ति**' के '**साधक**' हो सकते हैं, अन्यथा कदापि नहीं।

***

नारायणी-स्तुति का प्रयोग

■ नित्य-कर्म करके गुरु आदि को प्रणाम कर **'दीपक'** प्रज्वलित कर **भगवती दुर्गा** का **ध्यान** कर **नारायणी-स्तुति** का पाठ करना चाहिए। यदि **दीक्षा** प्राप्त हो, तो **कम-से-कम १०८** बार **'नवार्ण' मन्त्र का ऋष्यादि-न्यास-ध्यान** कर **'जप'** करना चाहिए और फिर पाठ करना चाहिए। **ध्यान-सहित जप** अथवा **पाठ** न करने से **'जप'** तथा **पाठ** व्यर्थ होता है।

■ **'मन'** का अन्यत्र होना ही **'ध्यान'**-हीनता है। **'ध्यान'** ही मुख्य है। **'पाठ'** तथा **'जप'** इसका साधन है। अतएव कहा गया है—**'ध्यानेन लभते सर्वम्'** (निर्वाण तन्त्र)। जिस **'मन्त्र'** का जो **'देवता'** है अर्थात् **'मन्त्रार्थ'** से उद्दिष्ट जो **'देवता'** का स्वरूप बनता है, उसके अनुसार ही उस **'रूप'** का **'ध्यान'** करते हुए **'पाठ'**, **'जप'** करना चाहिए।

■ इतना ही नहीं, किन्तु **'तद्-गत प्राण'** अर्थात् **'अनन्य शरणागत भाव'** से **'पाठ'** एवं **'जप'** करना चाहिए।

■ विशेष कामना हेतु ११ बार **'नारायणी-स्तुति'** का पाठ **'नित्य'** करना चाहिए।

■ **'दीप-शिखा'** पाठ के अन्त तक जलती रहनी चाहिए। **'दीप-शिखा'** में **'देवी'** का **'ध्यान'** करना चाहिए । यह दिन में करे या रात्रि में, जैसा अवकाश हो।

■ सामान्यत: **१०८ दिन 'पाठ'** करने के बाद **'विशेष कृपा'** का अनुभव होता है। यदि कर्मानुसार विलम्ब हो, तो **पाठ का त्याग** नहीं करना चाहिए। **'कलौ संख्या चतुर्गुणा'** के अनुसार **४३२ दिन** तक धैर्य-पूर्वक **'पाठ'** करना चाहिए। ऐसा करने पर **विशेष अनुभूति** अथवा **'फल'** अवश्यमेव देखने में आता है।

श्रीदेवी-उक्ति का प्रयोग

■ प्रति-दिन कुछ समय तक **श्रीनारायणी-स्तुति** का विधि-वत् पाठ करने के बाद **परिवार-समाज-विश्व** के कल्याण की कामना से **श्रीदेवी-उक्ति** का **पाठ** करे, तो **परम आनन्द** की अनुभूति के साथ **परिवार-समाज-विश्व** का **कल्याण** होता है।

***

नवीन उपयोगी पुस्तकें

सामान्य एवं विशेष हवन-सामग्री के विवरण-सहित
स्वामी श्रीविद्यारण्य जी महाराज की कृपा से प्राप्त
'बीज-त्रय' (ऐं-ह्रीं-क्लीं) एवं
'सप्तशती-माला-मन्त्र' के बीजों तथा
'भगवती दुर्गा के नामों' से
'सात सौ विशिष्ट आहुतियों' का विधान

हवनात्मक श्रीदुर्गा सप्तशती

सुन्दर लाल अक्षरों में सजिल्द
'चण्डी' आध्यात्मिक पुस्तक-माला के सदस्यों हेतु
रियायती मूल्य १००.०० मात्र

बाहरी प्रकाशन

❖ कुमारी तन्त्र	१००.००	❖ तान्त्रिक गुरु	१००.००
❖ माया तन्त्र	१००.००	❖ योगी गुरु	०४५.००
❖ कङ्काल-मालिनी तन्त्र	१००.००	❖ ज्ञानी गुरु	०८०.००
❖ मुण्ड-माला तन्त्र	२००.००	❖ श्रीनिगमानन्द की जीवनी	०८०.००

अग्नि-प्रमुख देवों द्वारा देवी की स्तुति

नारायणी-स्तुति

'भक्त को सर्वज्ञ बनानेवाली' देवी की स्तुति

●●●

'सभी प्रकार के दुःखों को दूर करनेवाली' देवी की स्तुति

●●●

'समस्त दुर्लभ वस्तुओं को सुलभ बनानेवाली' देवी की स्तुति

●●●

'आसुरी शक्तियों से विश्व की रक्षा करनेवाली' देवी की स्तुति

●●●

'सर्व-स्वरूपिणी, मोक्ष-दायिनी' देवी की स्तुति

●●●

'जीवों की आश्रय-रूपिणी' देवी की स्तुति

●●●

'सभी मङ्गलों की मङ्गल-रूपिणी' देवी की स्तुति

●●●

'सृष्टि-स्थिति-विनाश की शक्ति-स्वरूपा' देवी की स्तुति